नारी-जीवन-चक्र

लेखिका:—
राजकुमारी बिन्दल

प्रथमवार १०००
मयूर प्रकाशन
झाँसी
मूल्य १॥)

समर्पण

अपने प्रेमालु पूज्य पिताजी श्री रघुनाथप्रसाद, स्नेहमयी पूज्य माता श्रीमती सावित्री देवी स्नेही भ्राता श्री वेदप्रकाश तथा परिवार के सभी व्यक्तियों को जिनके प्रेम पूर्ण संरक्षण में मुझे शिक्षा प्राप्त करने का परम सौभाग्य मिला तथा नारी जीवन के विकास की प्रेरणा मिली ।

दो शब्द

श्रीमती राजकुमारी जिन्दल ने 'नारी जीवन-चक्र' पुस्तक लिखकर हिन्दी भाषी स्त्रीजगत का बड़ा उपकार किया। अनेक सामाजिक विषयों पर श्रीमती जिन्दल ने नये ढंग से गहरी बातें कही हैं। प्रत्येक विषय को किसी कहानी, अपने या किसी दूसरे के अनुभव से आरम्भ करती हैं। पाठक का मन सहज ही पढ़ने में लग जाता है। फिर श्रीमती जिन्दल उस विषय का गम्भीर—परन्तु बड़े मनोरञ्जक—ढंग से अन्वेषण, विश्लेषण करती हैं, पाठक को उनकी बात समझने में कठिनाई नहीं पड़ती है। पुस्तक लेखन की इस सुन्दर परिपाटी के लिये विदुषी लेखिका को मेरी बधाई।

वृन्दावनलाल वर्मा

विषय-सूची

अपना मार्ग ढूंढ़ने का प्रयत्न भी मैंने किया है और उसके लिये कुछ सुझाव भी रखे हैं। हो सकता है कि कुछ भाई बहनों के दृष्टि कोण और भावनाओं का मेरे मन्तव्यों और सुझावों से सामंजस्य न हो। किसी के हृदय को दुखाना मेरा तात्पर्य कदापि नहीं है। विनय पूर्वक अपने सुझावों को अपने भाई बहनों के सामने रखना ही मुझे अभीष्ट है। यदि समाज को इन छोटे छोटे निबन्धों से किंचित भी लाभ पहुँचा, तो मैं अपने आपको परम भाग्यशालिनी मानूंगी।

इस पुस्तिका के ढांचे को प्रस्तुत करने में अपने पतिदेव श्री अमरनाथ विंदल से मुझे जो सक्रिय तथा मूल्यवान सहायता मिली है उसके लिए उन्हें धन्यवाद देना तो एक भारतीय पत्नि होने के कारण बड़ा अजीब सा लगता है तो भी इसे तो मुझे प्रकाश्य रूप से स्वीकार करना ही चाहिए कि मेरे सारे अस्तित्व को ही उनसे जो घनिष्ट, व्यापक और अभिन्न सम्बन्ध है उसी के प्रभाव से मेरी यह प्रवृत्ति और मेरा यह साहस हो सका है। झांसी के प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रकार श्री भगवानदास माहौर जी ने भाषा आदि के सम्बन्ध में मुझे जो बहुमूल्य सहायता दी है उसके लिए मैं उनकी कृतज्ञ हूं, तथा उस समस्त साहित्य की ऋणी तो हूं ही, जिससे मुझे इस ओर यथेष्ट प्रेरणा मिली है।

पुस्तक में जो उदाहरण दिये गये हैं वे घटना के रूप में वास्तविक और आंखों देखी बातों पर अवलम्बित है किन्तु व्यक्तियों के नाम सभी काल्पनिक हैं। मैं विनय पूर्वक निर्हीक फिरनवेदन करती हूं कि ये उदाहरण विषय को स्पष्ट करने के लिए ही दिये गये हैं किसी को तिराकृत करने के अभिप्राय से कदापि नहीं।

मेरी जैसी नौ सिखिया की पुस्तक में त्रुटियों का होना कोई अनहोनी बात न होगी और मैं अपने पाठकों से करबद्ध क्षमा चाहती हूँ।

झांसी
२६—३—१९५०

राजकुमारी विन्दल

लेखिका और उनके पति श्री अमरनाथ सिन्दल

नारी जीवन चक्र

डिग्री

"यह ज़रा सम्हल सम्हल कर चला करो, भगवान ने जैसे तैसे तो यह दिन दिखाया है; कहीं कोई गड़बड़ न हो जाय" रेणुका की सास ने उसे ऊपर से नीचे तक निहारते हुये कहा। रेणुका ने मन में विचारा कि जो सास इतनी कठोर थी कि सीधे मुँह बात भी नहीं करती थी, क्या कारण है कि अभी वह इतनी दयावती प्रतीत होती है। सास कुछ समय पश्चात फिर बड़बड़ाई "कन्याओं को तो मौत धरी ही कहां है। कामिनी और रुक्मिणी को तो देखो कभी भी कुछ न हुआ लेकिन उनके फल कहां धरे हैं। इनके लिये तो फूंक फूंक कर कदम रखना पड़ता है दो कन्याओं के बाद तो पुत्र ही उत्पन्न होता है। फिर अब की बार तो लक्षण ही और हैं" यह सुन सुना कर सास भावी पौत्र के जन्म के उपलक्ष में आयोजित उत्सव मङ्गल-गायन तथा हर्ष के दिवा स्वप्न में मग्न हो गई।

रेणुका को सातवां मास आरम्भ होगया। उसकी भांति भांति से सतर्कता के साथ सेवायें तथा खातिरें होने लगी। मेवा, मिश्री, मलाई, मक्खन इत्यादि की प्रातः ही से भरमार होने लगी। कार्य में दिन रात पिलने वाली रेणुका को मानो गृह-कार्य से तो कोई सरोकार ही नहीं था। स्नान, उबटन इत्यादि से निबटाने के लिये प्रसिद्ध नाईन 'चन्दो' की नियुक्ति कर दी गई थी : सास ने सोरसाद सभी आवश्यक सामग्री एकत्रित करना आरम्भ करदी "फिर समय कहां मिलेगा, दस पन्द्रह दिन तो गाने में ही निकल जायगे" यही वाक्य रेणुका की सास की जिव्हा पर हर

समय रहते थे। गृह में ढोलकी मजीरे यहां तक कि उत्सव में आने वाली महिलाओं का स्वागत करने के लिये सुपारियां तक काट काट कर रख दी थीं। धीरे धीरे वह शुभ घड़ी एक एक दिन वर्ष के समान काटकर आ रही लगी। रेणुका रात्रि से ही प्रसव पीड़ा से मीन के सदृश तड़प रही थी। सास ने स्वच्छ दधि तथा पेड़ों से उसका मुख बिठलाया क्यों कि इनको तो इच्छित फल प्राप्त करने के लिये 'शुभ' माना जाता है ऐसा परम्परा से प्राचीन भारतीय नारी का दृढ़ विश्वास चला आ रहा है। प्रौढ़ दाई 'नथिया' को तुरन्त बुलवाया गया—वह भी इठलाती हुई दौड़ी आई और ठुमक कर बोली 'बहू जी अब की पोते की दादी बनाऊंगी, मेरा भी ख्याल रहे, मैं भी सदा मनोती मनाती रही हूं। दस २५) तथा एक चांदी का कंगन देना पड़ेगा। इस प्यारी चकचक में रेणुका की पीड़ा असह हो चली और उसको निश्चित प्रसव गृह में ले जाया गया। सास ने पौत्र जन्म के स्वागत के लिए मंगल गायन की सब सामग्री तैयार कर दी थी। रेणुका के ससुर भी जिसकी आस लगाये बुढ़ापा काट रहे थे उस के ऊपर न्योछावर करने के लिये थैली का मुख खोले बैठे थे। निश्चित समय गृह से रोने की आवाज आई। सबके कान शुभ संवाद सुनने के लिये उधर ही लग गये।

कुछ समय बाद रेणुका को होश आया तो देखती क्या है कि चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ है। सास एक ओर मुंह लटकाये अनमनी सी फिर रही थी तथा ससुर जी का नथिया दाई से कुछ झगड़ा हो रहा था सारे गृह का वातावरण अत्यन्त क्षुब्ध सा था मानो किसी का निधन हो गया हो किन्तु नवजात-शिशु के रोने की आवाज तो आ रही थी। रेणुका ने कई बार आवाज देकर जल मांगा तब कहीं लड़खड़ाते हुये पैरों से सास आई और कच्चे पानी का ही बर्तन पटक कर जाने लगी "माता जी यह पानी तो कच्चा तथा ठण्डा है मुझे हानिकारक होगा" रेणुका ने क्षीण स्वर में कहा।

/ \ ।आती कच्चा पक्का बता रही है" बड़े कमाऊ रत्न पैदा तेरी तीमारदारी में ही लगी रहूं मैंने सबका पेट काटकर

इतना चटाया मगर सब यों ही गया। मुझे क्या पता था कि यह "भैंस का गोबर" ही मेरे घर में आयगा। हाय मेरे राधेश्याम के भाग्य में डिग्रियां ही बदी थीं। अब रेणुका की समझ में आया कि इस सन्नाटे, उदासी तथा विक्षुब्धता का कारण कोई मृत्यु नहीं वरन नवजात शिशु का जन्म ही है और वह शिशु पुत्र नहीं, पुत्री ही है। वह बिचारी भी अपने भी अपने दुर्भाग्य पर आंसू बहाती हुई ठन्डी सांस भर कर रह गई।

यह मेरी एक सहेली की आप बीती है और समाज में ऐसी हजारों नहीं वरन लाखों घटनायें दिन रात होती रहती हैं।

कन्या जन्म को हमारा 'समाज' प्रायः डिग्री ही कह कर सम्बोधित करता है। डिग्री तो एक कानूनी अधिकार है जो अदालत ऋण न चुकाये जाने पर कर्जदार के विरुद्ध धनी को दे देती है। कन्या भी समाज में माता पिता के लिये ऋण के सदृश है। आज हमारे देश में साधारण-तया कन्या की यही दुर्दशा है। जैसे मियादी डिग्रियां होती हैं। इसी प्रकार कन्या रूपी डिग्री की मियाद कन्या के यौवन-काल में पदार्पण होने तक मानी जाती है। उस समय उसके पिता को सामाजिक बन्धनों की शृंखलाओं में उलझकर कन्या का पाणि-ग्रहण करने के लिये प्रायः ऋण तक लेने के लिये बाध्य हो जाना पड़ता है। इस ऋण को दहेज का रूप दिया जाता है। दहेज वह जाक है जो धन न चिपटी हुई दूध नहीं खून ही पीता है। पूरे जीवन भर कन्या के पिता को सताती है। इसी कारण से कन्या-जन्म हमारे समाज में 'डिग्री' कहलाने लगा है।

कन्या के माता पिता उसके उत्पन्न होने पर ही इसी भाव से प्रेरित होकर उसकी दुर्गति कर देते हैं। यही नहीं कन्या के साथ २ उसकी माता की भी दुर्गति की जाती है। यह भी नहीं सोचा जाता है कि इसमें उसकी माता का क्या दोष है तथा क्या वश है। इसका उसकी माता के स्वास्थ्य पर तो बुरा प्रभाव पड़ता ही है, साथ २ कन्या के पालने में ही अड़चनें पड़ती हैं। यही कारण है कि कन्यायें बालकों से अधिक रोगी रहती हैं। उनका हृदय तथा मस्तिष्क लड़कों की अपेक्षा अधिक क्षीण रह जाता है। हीनता का भाव (Inferiorty Complex) उसे सर्वदा अंकुश की

तरह चुभता रहता है। माता पिता पुत्री और पुत्र में जन्म से मरण तक अन्तर रखते हैं। पुत्र जन्म पर तो प्रसव काल में प्रसूतिका तथा पुत्र को सुख पहुँचाने के लिये सभी वस्तुओं के अतिरिक्त देख रेख तथा सेवा के लिये सेविकायें भी रखी जाती हैं। किन्तु पुत्री जन्म पर उसे पेट भर दूध भी दुर्लभ हो जाता है। पुत्र का लालन पालन बड़ी सतर्कता से तथा दूध और फलों से किया जाता है। किन्तु कन्या के लिये इसकी आवश्यकता नहीं समझी जाती। यदि माता का दूध उसके पोषण के लिये पर्याप्त न हो तो रोटी, दाल, शाक इत्यादि ही उसके लिये उपयुक्त समझा जाता है चाहे वह सात-आठ मास की ही क्यों न हो। लड़कियों के लिये तो अमुक वस्तु कहां से आये और पुत्र के लिये तो अमुक वस्तु आवश्यक है। यही माता पिता की धारणा होती है। कन्या के बड़े होने पर भी उनमें तथा भाइयों में अन्तर माना जाता है उनका भोजन दो प्रकार का होता है। कन्याओं को पढ़ा लिखा कर योग्य बनाने की अपेक्षा गृह कार्य में जोत दिया जाता है ताकि गृह में कम खर्च हो। जहां पुत्रको शिक्षा दिलाना अनिवार्य समझा जाता है वहां कन्याओं की शिक्षा में धन लगाना व्यर्थ समझा जाता है। "पढ़ कर उन्हें क्या नौकरी करनी है" यही सोच कर वे सन्तुष्ट रहते हैं। इस प्रकार एक कन्या जो एक कुल की नहीं दो कुल की शोभा है उसके भावी जीवन के उत्थान एवं उन्नति पर माता पिता की ही ये धारणायें कुठाराघात करती हैं।

जब से पाश्चात्य सभ्यता का देश में पदार्पण हुआ है, हमारा देश वहां के रंग से बहुत रंग गया है। खाने पीने, रहने सहने के ढंग में प्राचीन समय से बहुत अन्तर है। देश में कुछ श्रेणी के मनुष्यों ने वहां के ढंगों को निस्संकोच अपनाया है। यह निस्संकोचता तभी संगत हो सकती है जब यहां का समाज भी वैसा हो। क्या विदेशों में भी नारियों को इसी प्रकार 'पैर की जूती' समझा जाता है? क्या कन्याओं की वहां पर भी यही दुर्दशा की जाती है। इसका उत्तर हमारे समाज को गत युद्ध में जर्मनी [illegible] तथा दूसरे देशों की स्त्री-सेनाओं के यशस्वी कार्य से मिल सकता है। वहां की नारियों को समान अधिकार तथा समान सामाजिक स्थिति

उसके प्रमाण हैं। हम विदेशी सभ्यता की बुराइयों को अपनाते रहे लेकिन अच्छाइयों की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते। हमारा देश भी यदि नारी उत्थान की लाभदायक बातों में इन देशों का अनुकरण करें तो नारी अबला नहीं शक्ति की अवतार है। विदेशी समाज में नारी का कितना सम्मान होता है। पुत्र की अपेक्षा विवाह उपरान्त भी पुत्री से माता पिता का कितना सम्पर्क रहता है। यह विचारणीय है। पुत्रीयों को भी योग्य बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। उनकी शिक्षा को भी पुत्रों से अधिक अनिवार्य समझना चाहिये। पुत्रों को शिक्षा देते समय माता पिता का यही ध्येय होता है कि सभी प्रकार से स्वावलम्बी बन सकें। यदि हमारे देशवासियों की पुत्र के साथ २ पुत्रियों के लिये भी यही धारणा हो जाय। और वे उनको भी स्वावलम्बनी बनाने के ध्येय से शिक्षा दें, तो कितनी उन्नति हो। देश की राजनैतिक तथा सामाजिक स्थिति को दृढ़ करने के लिये स्त्री और पुरुष दोनों का समान रूप से दृढ़ होना आवश्यक है। कन्या ही भविष्य में पत्नियां तथा मातायें होती हैं। माता पिता को उनको भलीभांति से योग्य बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। योग्य माताओं से सुपुत्रों का जन्म होता है। उन्हीं से समाज और देश उज्ज्वल रह सकता है।

कन्या की स्थिति में सुधार करने के लिये दहेज जैसी कुप्रथाओं का उन्मूलन होना आवश्यक है। वर्तमान स्थिति में पुत्री का विवाह सम्पन्न करने के लिये माता पिता तभी तैयार हो पाते हैं जब उनके पास वर के जन्म से लेकर विवाह कार्य तक के पालन पोषण, शिक्षा आदि का सम्पूर्ण व्यय बल्कि आगे की पढ़ाई आदि का व्यय भी चुकाने की सामर्थ्य हो। वर पक्ष वाले भलीभांति लड़कों का सौदा करते हैं। हमारे समाज में प्रायः देखा जाता है कि, पुरुष कन्या के पिता बनने पर तो सुधार की आवाज उठाते हैं किन्तु वर के बाप होने पर, 'गिरगिट की तरह' रंग पलट देते हैं। इस कुरीति का भलीभांति विरोध होना चाहिये। जो कोई भी दहेज के किसी भी रूप में मांग करे उसका सामाजिक बहिष्कार होना चाहिये तभी कन्या 'डिग्री' से सुपुत्री कहला सकती है।

उपचार

हमारे समाज में अन्तरजातीय विवाह का प्रचार होना चाहिये। इसके प्रचार से वर ढूंढने के लिये सुविधा होगी क्योंकि किसी जाति में कन्यायें अधिक होती हैं किसी में लड़के। अन्तर्जातीय विवाह होने से दहेज प्रथा में सुधार होगा क्योंकि वर खोज का दायरा बड़ा होने पर कन्या वालों को एक ही पर अवलम्बित न होना पड़ेगा।

हमारी स्वतंत्र सरकार को भी भारत माता की सभी सुपुत्रियों को योग्य बनाने के लिये कुछ आवश्यक नियम बनाने चाहिये। उसको लड़कों की तरह लड़कियों को भी अनिवार्य निशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिये। उनको निसंकोच पुरुषों की तरह योग्यतानुसार प्रत्येक विभाग में स्थान देना चाहिये। प्रसव आदि के अवसर पर सवेतन आवश्यक अवकाश देना चाहिये तभी अबला बननेवाली कन्यायें शक्तिशाली बन सकती हैं।

भारतीय समाज में पुत्रियों को पुत्र के समान ही बनने में और भी बहुत सी सामाजिक रीतियां बाधा डालती हैं। माता पिता के लिये पुत्री का धन अग्रहण माना गया है। यह नियम इतना दृढ़ है कि यदि अवसर पड़ने पर माता पिता पुत्री के घर जाते हैं तो पुत्री के घर पानी पीना भी पाप समझते हैं। यदि ऐसा भूलचूक से किसी कारण-वश हो भी जाता है, तो उसका प्रायश्चित करना पड़ता है। दूर देश में पुत्री के यहां जाकर भी भोजन तथा ठहरने में कितनी असुविधा क्यों न हो उसे अधर्म मानकर कष्ट सहन करना बहुत ठीक समझते हैं। सम्बन्धी व्यक्ति भी मानो पराये हो गये।

पुत्री तथा पुत्र के लिये माता पिता ने समान कष्ट उठाये। दोनों के लालन पालन में समान रूप से व्यय करें फिर पुत्र तो मां बाप का जीवन धार तथा बुढ़ापे की लकड़ी होता, उसकी कमाई से वे अपना जीवन बितायें किन्तु कन्या का धन माता पिता के लिये अग्रहण क्यों हो और समाज में इसका विरोध क्यों हो। यदि किसी के लड़कियां ही लड़कियां होती हैं तो पिता को सन्तान के होते हुये भी पराया पुत्र गोद लेना पड़ता है। समाज से गोद की वह हानिकारक प्रथा हटनी चाहिये। पुत्री होने

नीम हकीम खतरे जान

प्रसिद्ध कहावत है, 'नीम हकीम खतरे जान' जो हमारी शिक्षा की वास्तविक दशा पर भली भांति चरितार्थ होती है। जिस प्रकार से एक वैद्य जो अपने कार्य में अपूर्ण होता है, रोगियों के लिए खतरनाक होता है, उसी प्रकार से वे नरनारी जो एक स्तर तक शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकते हैं अपने देश तथा समाज की उन्नति में घोर कठिनाइयां उपस्थित करते हैं। नारी शिक्षा के सम्बन्ध में यह और भी अधिक सत्य है। आज हमारे देश को शिक्षित कहलाने वाली नारी की 'नीम हकीम' जैसी ही स्थिति है। हमारी अधिकतर बहनें या तो अशिक्षित हैं या अपूर्ण शिक्षित हैं। वास्तविक शिक्षित बहनों का तो एक प्रतिशत से भी कम औसत आयगा। ग्राम तथा छोटे २ कस्बों का तो कहना ही क्या, बड़े-बड़े नगरों में भी, जहां नारी शिक्षा की सुविधायें हैं, वातावरण ही ऐसा रहता है कि अधिकतर कन्यायें कक्षा २ या ३ तक बड़ी कठिनाई से शिक्षा ग्रहण करती हैं या उनके लिए यही यथेष्ठ समझा जाता है। हमारी गृहस्थी में कन्याओं की शिक्षा में धन लगाना व्यर्थ समझा जाता है। 'पढ़कर लड़कियां बिगड़ जायेंगी' यह हमारी माताओं और आदरणीयों की धारणा बन गई है। यही कारण है कि अधिकांश नारी जगत अशिक्षित होने के कारण अज्ञान के कूप में डूब रहा है। जिन बहनों को पढ़ने का सौभाग्य मिल भी जाता है उनकी शिक्षा प्रायः अपूर्ण रह जाती है और नारी जाति के उत्थान में जरा भी सहायक नहीं होती, और जो पढ़ने के लिए पूर्णतया पाश्चात्य ढंग पर शिक्षित भी होजाती हैं, वे हमारे समाज और संस्कृति को घृणा की दृष्टि से देखने लगती हैं। वे अपनी वास्तविकता को खो बैठती हैं। उनसे कोई आशा करना 'हथेलीपर सरसों उगाना है।'

देश की राजनीतिक तथा सामाजिक स्थिति से तो जैसे कोई उन्हें

कोई सरोकार ही नहीं। नारी जाति की अवनति का उनको अनुभव भी नहीं होता। इन सब बातों पर भारतीय दृष्टिकोण का विचार न करके वे पाश्चात्य ढंग को ग्रहण करने में ही अपना गौरव समझती हैं।

हानियाँ

ऐसी नारियों के द्वारा ही समाज को अशिक्षित नारियों से भी अधिक अधिक हानि पहुंचती है। अशिक्षित नारियाँ अज्ञान होने के साथ पुरानी परिपाटी तथा अन्ध विश्वासों को लगन पूर्वक पूरा करती हैं, तथा उसीपर दृढ़ रहती हैं। किन्तु हमारी अर्धशिक्षित बहने किसी भी विचार धारा पर दृढ़ नहीं रह पाती, क्योंकि वास्तविकता का ज्ञान न होने के कारण वे पुरानी बातों पर भी विश्वास रखती हैं, और वातावरण के कारण तथा-कथित नकली आधुनिकता को भी अपनाने का प्रयत्न करती हैं। उनकी दशा त्रिशंकु जैसी 'न इधर की न उधर की' हो जाती है, वे प्रत्येक पहलू में कदम रखना चाहती हैं, किन्तु उसको निभाने में असमर्थ होने के कारण अपनी स्थिति को और भी निर्बल बना लेती है। इसका संतति पर बड़ा कुप्रभाव पड़ता है और उनका उत्थान भी विकृत हो जाता है।

अतीत

प्राचीन काल में नारियों को इस ढंग की शिक्षा दी जाती थी कि वे अपने स्त्रीत्व का पालन करने में पूर्णतया सफल होती थीं वे अपने पतियों के साथ शास्त्रार्थ करती थीं! राज दरबार के कार्यों में तथा अपने पतियों के साथ हाथ बटाती थी। उनको सेवा, धर्मशीलता तथा निर्भयता का पाठ पढ़ाया जाता था। इसी कारण वे बड़े-बड़े संकट हँस हँस कर झेलती थी तथा आत्म रक्षा का भार स्वयं सम्हालती थी। अपनी सन्तान को वीर आज्ञाकारी तथा गुणी बनाने में ही वे अपना गौरव समझती थीं। उस समय की शिक्षा-प्रणाली सफल सिद्ध हुई। हमारा प्राचीन इतिहास इसका साक्षी है। आधुनिक शिक्षा-प्रणाली में बहुतसी त्रुटियां हैं। यही कारण है कि आजकल की नारियां भीरु और अबला हैं। उनमें अपनी आत्मरक्षा का भार स्वयं संभालने की तनिक भी शक्ति नहीं।

क्या हो ?

भारतवर्ष अभी तक परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ा था। हम पराधीन थे। इसलिए शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन करना बहुत ही कठिन समस्या थी। यों तो इस समस्या से भी अधिक महत्वपूर्ण समस्याएँ हैं, जिनपर विचार करना अनिवार्य है। किन्तु हमारी शिक्षा देश की सबसे प्रथम और बड़ी समस्याओं में से ही एक है। हमारी भावी सन्तान ही देश की बागडोर सम्भालेगी। हमारे देश का भविष्य इन्हीं के हाथों में होगा। सन्तानों का योग्य होना उनकी माताओं की योग्यता पर निर्भर है। अतएव हमारा उत्तरदायित्व बहुत बढ़ जाता है। कन्याएँ ही भावी माताएँ तथा पत्नी होती हैं। इसलिए देश में ऐसी शिक्षा प्रणाली प्रचलित होनी चाहिए जिससे ये भावी माताएँ तथा पत्नियाँ योग्य बन सकें।

प्रत्येक ग्राम तथा छोटे-छोटे नगरों में शिक्षा की सुविधायें होनी चाहिए। शहरों का तो कहना ही क्या गाँव तथा कस्बों में भी स्त्री गणना के अनुसार कन्याओं के लिए पाठशालाएँ होनी चाहिये जिनमें प्रत्येक कन्या का शिक्षा पाना अनिवार्य होना चाहिए शिक्षिकाओं की योग्यता का पूरा ध्यान रखना चाहिए योग्य शिक्षिकाएँ ही कन्याओं को योग्य बना सकती हैं। शिक्षिकाओं की शिक्षा के अलावा उनके आचार-विचार तथा अन्य नारी सुलभ गुणों का भी ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि शिक्षिकाएँ जैसे विचारों से सहमत होंगी वे कन्याओं को वैसा ही उपदेश देंगी। स्वतन्त्र भारत में अब इस कार्य में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिये।

शिक्षा कैसी हो ?

कन्या पाठशालाओं में पढ़ाये जाने वाले विषयों का क्रम और सूची ठीक से निर्धारित होनी चाहिए। कन्याओं के लिए कौन से विषय उनके जीवन को सफल बनाने में अधिक उपयोगी होंगे उनपर अधिक ध्यान देना चाहिये। राष्ट्र भाषा हिन्दी, गणित, भूगोल, इतिहास, आदि का ज्ञान तो उनके लिए उपयोगी होगा ही। इसके साथ साथ [illegible] सम्बन्धी बातें जानने के लिए प्रारम्भिक विज्ञान और चिकित्सा

[illegible] रखा जाय तथा उनके [illegible] रूप से ध्यान रखना चाहिये। [illegible] सीनें तथा [illegible] भी स्थापना [illegible] की शिक्षा विद्यालयों के [illegible] बनाना, सिलाई, रोगी की [illegible] का पालन पोषण करना [illegible] के अनुकूल खर्च [illegible] जीवन को सफल बनाने के लिए [illegible] सिखाने चाहिये जिनसे [illegible] समय का सदुपयोग करना सीख जाय।

लड़कियों को धर्म सम्बन्धी बातें सिखाने के लिए धर्म का भी विषय रखना जरूरी है। जो जिस धर्म को मानने वाला हो उसे वही धर्म स्वतन्त्रतापूर्वक मानने देना चाहिए। किन्तु वास्तविक धर्म का बोध कराते हुए उसमें उत्पन्न हुए अन्धविश्वासों की हानियाँ बतानी चाहिये। हिन्दू धर्म में विशेष कर अन्धविश्वास रूढ़ि-वाद तथा कुरीतियाँ सदियों से चले आ रहे हैं, उनकी हानियाँ बतानी चाहिये। धर्म की वास्तविकता तथा उसका महत्व बताते हुये उसका पालन करना सिखाना चाहिये। लड़कियों का सबसे बड़ा आभूषण है शील और लज्जा। लड़कियों को ऐसे ढंग की शिक्षा देनी चाहिये जिससे वे इस शिक्षा से पूर्ण रूप से अलंकृत हो जायें। प्रायः देखा जाता है कि कुमारियाँ जब पढ़-लिख जाती हैं तो माता की आज्ञा पालन करना तथा उनका आदर करना अपनी शान के नीचे की बात समझने लगती हैं। पाठशालाओं में इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि छात्रायें शिक्षा ग्रहण के साथ-साथ सभ्यता तथा आज्ञा पालन करना व आदर करना भी सीखती हैं या नहीं।

विद्यालयों में कन्याओं को प्राचीन इतिहास के साथ-साथ आधुनिक राजनीतिक बातों का पूर्णतया बोध कराना चाहिये। राजनीति और

चाहिए इन कुप्रथाओं के कारण ही हमारा समाज उन्नति नहीं कर पाता। नारी जाति को भी आगे बढ़ कर उदार होना चाहिए। धर्म से अन्ध विश्वास तथा आडम्बर को निकाल कर वास्तविक धर्म का पालन करना चाहिये। समाज में और भी अनेकों कुरीतियां हैं जिनके कारण हमारा समाज उन्नति नहीं कर पाता। कन्याओं को इन विषयों का विस्तारपूर्वक अध्ययन कराना चाहिए। आज की स्कूल की छात्राएँ ही भविष्य की गृहिणियां और मातायें हैं। यदि वे सामाजिक कुरीतियों को पूर्णतया समझ जायेंगी तो वे गृहस्थ जीवन में पदार्पण करते ही उनको अपनी गृहस्थी से दूर करने का प्रयत्न करेंगी। उनकी सन्तानें भी सुखी खुशहाल होंगी। नारी जीवन का विशेष अंग दाम्पत्य जीवन सम्बन्धी विषयों का बोध भी कन्याओं को मार्ग-प्रदर्शन का काम करेगा। इसकी अनभिज्ञता से भी बड़ी बड़ी हानियां उठानी पड़ती है। संगीत की शिक्षा का भी प्रबन्ध होना जरूरी है जिससे वे गृह में राष्ट्रीय गान गा सकें तथा अपनी सन्तान को देश प्रेमी बना सकें। इस प्रकार के विषयों को पाठशालाओं में अनिवार्य कर देने से नारी समाज के सुधार की बहुत बड़ी सम्भावना है।

आज भारत स्वतन्त्र है। देश के इस उत्तरदायित्व का भार संभालने के लिये तथा इसको सुराज राज्य बनाने के लिए पुरुषों को नारी के सहयोग की अत्यन्त आवश्यकता है। नारियां सभी प्रकार से पुरुषों का हाथ बटाएँ तभी देश का कल्याण है। हमारा नारी समाज पतन के गर्त में गिरा है जिसको ऊँचा उठाने के लिये उपयुक्त शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है। प्रत्येक नगर, ग्राम, कस्बों में कन्या पाठशालाओं तथा विद्यालयों का होना नितान्त आवश्यक है। उन्हें ऐसे विषयों का अध्ययन कराना चाहिए जिससे कन्याएँ भविष्य में हित-प्रदा अन्नपूर्णा, कल्याणमयी जननी, आनन्ददायिनी सहचरी, योग्य शिक्षिका तथा आदर्श नागरिका एवं कुशल गृहणी बन कर अपने स्वतन्त्र देश की शान, बान, आन को उच्च कोटि पर पहुँचा कर अपना नारी जीवन सफल बना सकें और अपनी अमर कहानी संसार के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिख सकें।

अभिशाप

कुछ समय हुआ, हमें एक सम्बन्धी के घर, कन्या के विवाह में सम्मिलित होना पड़ा, यह उत्सव बड़े समारोह से आनन्द पूर्वक मनाया जा रहा था। सब लोग इस सम्बन्ध से बहुत प्रसन्न ज्ञात पड़ते थे। पाणिग्रहण-संस्कार विधि पूर्वक रात्रि के ८ बजे समाप्त हो चुका था, सर्वत्र सब कुछ आनन्द ही आनन्द था किन्तु दूसरे दिन यकायक विदा के समय वर महोदय के सुशिक्षित पिता व भ्राता की क्रोधाग्नि भड़क उठी जिसका कारण शीघ्र समझ में न आ सका। बात इतनी बढ़ गई कि वर महोदय ने भी असंगत और अपमानजनक बातें अपने परिवार वालों का मस्तक ऊँचा रखने के हेतु सुना डालीं। सहन शीलता की भी हद होती है। कन्या पक्ष वालों ने पहले तो दबकर किंतु फिर प्रति-क्रिया रूप में जरा आवेश में आकर कुछ कड़े शब्दों में इस अशिष्ट व्यवहार का खुल कर विरोध किया। लीजिये आग में घी पड़ गया। वर के पिता; चाचा, भ्राता आदि सम्बन्धियों का तो कहना ही क्या, स्वयं वर महोदय ने भी पिता तुल्य श्वसुर तथा उनके दूर दूर के सम्बन्धियों को भी अपमानित करने में कोई कसर न उठा रक्खी और अपने ब्रह्मास्त्र का भी प्रयोग कर डाला यानी "हम कन्या को छोड़ जायंगे" तक की धमकी खुले मैदान डंके की चोट दी गई। कन्या पक्ष वालों को अपनी पुत्री का भविष्य विचार कर विवश होकर विष के घूंट पीकर, भरी सभा में अपने कहे, उपयुक्त शब्दों को भी अनुचित मानकर वापिस लेना पड़ा तथा कर बद्ध हो क्षमा याचना करनी पड़ी। अपने नये सम्बन्धियों की इस प्रकार दुर्गति करके वर पक्ष के महारथियों ने संतोष की सांस ली और एक घृणित विजय-हर्ष से वे उस निर्दोष कन्या को बिदा कराकर ले गये। यह एक सच्ची घटना है और मैं यह तो कह ही चुकी हूं कि वर महोदय, उनके ता, भाई इत्यादि उच्च शिक्षित तथा तथा-कथित अच्छे वंश के सदस्य हलाने का दावा रखते थे। छानबीन करने के पश्चात इस नीच व्यवहार

तथा मन मुटाव का मुख्य कारण यह ज्ञात हुआ कि वर पक्ष को दहेज में इच्छानुसार द्रव्य और सामग्री प्राप्त न हुई थी।

दहेज शब्द की वास्तव में परिभाषा क्या है? दहेज विवाह के अवसर पर दिये जाने वाले धन तथा सामग्री को ही नहीं कहते वरन कन्या की सगाई से लेकर उनके देहावसान तक तथा उसकी संतान की शादियों में भी जो सामान, धन आभूषण इत्यादि और सम्बन्धियों को टीका रूपी दक्षिणा में जो धन दिया जाता है—सभी दहेज है। कन्या की मंगनी होती है, विवाह होता है, फिर गौने की रस्म अदा की जाती है। संतान होने पर खिचड़ी और छूचक के रूप में भी बहुत सा सामान दिया जाता है। कन्या जब कभी भी मायके में आती है तब भी माँ, बाप, भाई को, वे कैसी भी परिस्थिति में क्यों न हों, उन्हें कुछ न कुछ देना अनिवार्य ही है। लड़की के भ्राताओं के विवाह होते हैं तथा फिर उनके भतीजे भतीजियां उत्पन्न होती हैं। तब भी चाहे कैसी भी स्थिति क्यों न हो बहनों को 'कर' के रूप में कुछ न कुछ देना अनिवार्य होता है। तात्पर्य यह है कि कन्या के विवाह से उसकी वृद्धावस्था तक समाज में ऐसी रस्में बन गई हैं कि पग पग पर दहेज देना पड़ता है। आज भात, कल खिचड़ी, परसों त्योहारी, सदैव देने का ही प्रश्न बना रहता है। मृत्यु पर भी ऐसी रस्में बन गई हैं कि कितनी ही दुखदाई तथा दर्दनाक मृत्यु क्यों न हो, किन्तु इन रस्मों को पूरा करना अनिवार्य हो जाता है। युवा मृत्यु पर भी 'बिरादरी' का भोज तथा जबरन दान इत्यादि दहेज के अमानुषिक रूपों को मानना ही पड़ता है।

अभिशाप

हमारे समाज में बहुतसी कुरीतियां प्रचलित हैं किन्तु उनमें से बहुत सी इतनी हानिकारक नहीं हैं कि उनको अभिशाप कहा जा सके किंतु दहेज की प्रथा आज ऐसा रूप पकड़ गई है कि हमारे समाज के लिये अभिशाप बन गई है। मनुष्य किसी भी परिस्थिति में क्यों न हो आर्थिक संकट ने चाहे कैसा भी रूप धारण कर रखा हो किन्तु कन्या के लिये योग्य वर प्राप्त करने केलिए बाजार भाव के अनुसार मूल्य चुकाना ही पड़ता है।

इस शोषक प्रथा का नारी जाति के उत्थान पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। मध्यम तथा निम्न श्रेणी के मनुष्य प्राय: के चंगुल में फँस जाने के कारण अपनी सन्तान को शिक्षा दिलाकर योग्य भी नहीं बना पाते। विशेषकर कन्याओं की शिक्षा में धन लगाना तो व्यर्थ तथा अनावश्यक समझा जाता है। क्योंकि कन्या चाहे कितनी भी योग्य क्यों न हो जाये किन्तु दहेज में धन अवश्य देना पड़ता है।

कन्या तथा वर के पिता व अन्य सम्बन्धियों में इच्छानुसार दहेज न मिलने के कारण मनमुटाव हो जाता है। कभी कभी तो यह भयंकर कलह का रूप धारण कर लेता है। हम कन्या को नहीं ले जायेंगे वर पक्ष की यही धमकी कन्या पक्ष का इच्छित शोषण करने के लिये काफी होती है। इस प्रकार देवी भगवती तथा लक्ष्मी पुत्री जिसका जन्म से युवा अवस्था तक घोर परिश्रम तथा सावधानी के साथ बड़े लाड़ चाव से पालन-पोषण होता है, विवाह के समय भार प्रतीत होने लगती है। यही नहीं जब कन्या श्वसुरालय में पहुंच जाती है, चाहे वह पिता के घर से कितना ही द्रव्य लावे गृह की नारियाँ चारों ओर से घेरकर प्रेम तथा मधुर बातों से बोल कर उसे धैर्य बंधाने की अपेक्षा नुक्ताचीनी करना ही अपना परम कर्तव्य समझती हैं। अमुक की वधू तो १०१ बर्तन लाई थी किन्तु उसके पिता ने तो कुल ५० ही दिये हैं। अमुक की वधू तो गौने में सब रेशमी साड़ियाँ लाई थी किन्तु इसकी माता ने तो सादा किनारी की सूती धोतियाँ दी हैं। इसी प्रकार के अनेकों कटाक्ष कन्या के बेचारे माता पिता पर किये जाते हैं। यदि वर महोदय भी कहीं दकियानूसी विचारों के होते हैं और माता पिता के आज्ञाकारी बनने में ही अपना कर्तव्य समझते हैं तब तो कन्या के साथ दुर्व्यवहार तथा अत्याचार असीमित हो जाते हैं। उसे सब प्रकार से यंत्रणा दी जाती है तथा निरी दासी समझा जाता है। समय समय पर तथा बात बात पर व्यङ्ग से मर्माहत किया जाता है। इस प्रकार से उसके पति तो रूढ़िवादी पुरुषों के दास होते हैं और कन्या उस दास की भी दास बना कर रक्खी जाती है। कहीं कहीं तो विशेष कर ऐसा जातियों तथा प्रदेशों में जहाँ शिक्षा का बहुत अभाव है घर के माता पिता कन्या के घर से

इच्छानुसार दहेज न मिलने पर कन्या को मारते पीटते तथा पति से पिटवाने तक में भी नहीं चूकते। सुशील कन्याऐं तो उन अत्याचारों को सह भी लेती हैं किन्तु बहुतसी अन्त में छुटकारे का कोई न कोई मार्ग निकाल ही लेती हैं। बहुत सी आत्म हत्या तक कर लेती हैं। बहुत सी कुमार्ग की ओर अग्रसर हो जाती हैं जरा सा प्रोत्साहन मिलने पर तथा किसी प्रपंच में फंस जाने पर अवसर मिलते ही रफूचक्कर हो जाती हैं। विवश होकर कुछ को वेश्या वृति धारण करके ही अपना जीवन व्यतीत करना पड़ता है। बहुत सी स्वाभिमानी नारियां श्वसुरालय वालों की बातें सुनकर आंतरिक मानसिक वेदना से पीड़ित होती रहती हैं और अन्त में क्षय जैसे किसी भयंकर रोग से ग्रसित होकर मृत्यु का शिकार बनती हैं।

दहेज की कुप्रथा के कारण भी भारतीय समाज में अधिकतर अन-मेल विवाह होते हैं। कन्या के हाथ पीले करने के लिये पर्याप्त धन न होने के कारण माता पिता उसका विवाह वृद्ध विधुर इत्यादि से करने को बाध्य हो जाते हैं। प्राय धन के लालच में आकर वर के माता पिता शिक्षित कन्या की निरक्षर वर के साथ शादी करने में नहीं चूकते। धनाभाव के कारण अबोध कन्याओं को बहु विवाह का भी शिकार होना पड़ता है। पैसे वाले पुरुष प्रथम स्त्री से संतान न होने के कारण या उससे अनबन होने के कारण निर्धन पिता की पुत्री से विवाह कर डालते हैं। रूप-रंग इत्यादि में घोर अन्तर होने के कारण दाम्पत्य जीवन दुखी रहता है और सन्तान भी योग्य नहीं होती। वृद्ध विवाह होने के कारण ऐसी नारियों का सर्वनाश हो जाता है और अत्याचार तथा भ्रष्टाचार की वृद्धि होती है। इस प्रकार दहेज की प्रथा से देश व समाज के उत्थान में बड़ी रुकावट पड़ती है स्त्री समाज उन्नति नहीं कर पाता और उसकी नींव खोखली हो जाती है। पुष्प को यदि विकसित होने के पूर्व ही कुचल दिया जाय तो उसकी शोभा कैसे गोचर हो सकती है। यही दुरव्यवस्था नारी समाज की है। या तो सुयोग्य वर ही नहीं मिलते और यदि मिलते भी तो दहेज इत्यादि के प्रश्न पर मन मुटाव हो जाता है। कन्याओं

भविष्य तो अन्धकारमय रहता ही है और माता पिता भी उनको शिक्षित करने में असमर्थ रहते हैं क्योंकि शिक्षित कन्याओं के योग्य वर ढूंढने में और भी अधिक दहेज चाहिये। अन्ततः वर पक्ष अन्धे धन के प्रयोग द्वारा समाज की नींव खोखली हो जाती है।

उपचार

स्वतन्त्र भारत की नारी अब अपना शोषण अधिक सहन न कर सकेगी। देश की अन्य प्रगति के साथ साथ उसका उत्थान भी अनिवार्य है। दहेज ही क्या ऐसी सभी हानिकारक प्रथाओं, रीति-रिवाज आदि का उन्मूलन करने के लिए वह कटिबद्ध है। केवल समय की आवश्यकता है और साथ में सहयोग की नागरिकता के नाते हम भविष्य में 'दहेज विरोधक बिल' इत्यादि के रूप में विधान द्वारा सहायता की अधिकारिणी हैं और और हमारी आशा पूर्ण होगी किन्तु मनुष्य को स्वयं भी अपने पैरों खड़ा होना चाहिए। हमारी सन्तति को आरम्भ से ही ऐसी शिक्षा देनी चाहिये कि सामाजिक अपराध कोई करे ही नहीं। क्यों 'अन्धे को न्योते दो बुलाये'। शिक्षा संस्थायें इस कार्य को सफलतापूर्वक कर सकती हैं। यदि भावी वर-वधुओं, दोनों के मन में एक आदर्श की स्थापना की जा सके तो समय आने पर इसका विरोध घर स्वयं उपचार कर सकते हैं। सन्तति अपने गुरुजनों के कार्य को तथा पद्धतियों को संस्कार के रूप में ग्रहण करती है। बचपन की भावनाएं बड़े होने पर प्रबल होकर ही कार्य में परिणित होजाती हैं प्रायः शिक्षित होते हुए भी उनको त्यागने में कठिनाई होती है। अतएव बाल्यकाल में ऐसे सामाजिक अपराधों का आभास होने तथा अंकुरित होने के पूर्व ही उनको दबा देने से सुधार की संभावना है। इसी प्रकार दहेज रूपी लेनदेन अथवा स्त्री जाति के एक अभिशाप का भी उन्मूलन किया जा सकता है।

इच्छानुसार दहेज न मिलने पर कन्या को मारते पीटते तथा पति से पिटवाने तक में भी नहीं चूकते। सुशील कन्याएँ तो उन अत्याचारों को सह भी लेती है किन्तु बहुतसी अन्त में छुटकारे का कोई न कोई मार्ग निकाल ही लेती हैं। बहुत सी आत्म हत्या तक कर लेती हैं। बहुत सी कुमार्ग की ओर अग्रसर हो जाती है जरा सा प्रोत्साहन मिलने पर तथा किसी प्रपंच में फंस जाने पर अवसर मिलते ही रफूचक्कर हो जाती हैं। विवश होकर कुछ को वेश्या वृति धारण करके ही अपना जीवन व्यतीत करना पड़ता है। बहुत सी स्वाभिमानी नारियां श्वसुरालय वालों की बातें सुनकर आंतरिक मानसिक वेदना से पीड़ित होती रहती हैं और अन्त में क्षय जैसे किसी भयंकर रोग से ग्रसित होकर मृत्यु का शिकार बनती है।

दहेज की कुप्रथा के कारण भी भारतीय समाज में अधिकतर बे-मेल विवाह होते हैं। कन्या के हाथ पीले करने के लिये पर्याप्त धन न होने के कारण माता पिता उसका विवाह वृद्ध विधुर इत्यादि से करने को बाध्य हो जाते हैं। प्राय धन के लालच में आकर वर के माता पिता शिक्षित कन्या को निरक्षर वर के साथ शादी करने में नहीं चूकते। धनाभाव के कारण अबोध कन्याओं को बहु विवाह का भी शिकार होना पड़ता है। पैसे वाले पुरुष प्रथम स्त्री से संतान न होने के कारण या अनबन होने के कारण निर्धन पिता की पुत्री से विवाह कर डालते हैं। रूप-रंग इत्यादि में घोर अन्तर होने के कारण दाम्पत्य जीवन दुखी रहता है और सन्तान भी योग्य नहीं होती। वृद्ध विवाह होने के कारण ऐसी नारियों का सर्वनाश हो जाता है और अत्याचार तथा भ्रष्टाचार की वृद्धि होती है। इस प्रकार दहेज की प्रथा से देश व समाज के उत्थान में बड़ी रुकावट पड़ती है स्त्री समाज उन्नति नहीं कर पाता और उसकी खोखली हो जाती है। पुष्प को यदि विकसित होने के पूर्व ही कुचल दिया जाय तो उसकी शोभा कैसे गोचर हो सकती है। यही दुरव्यवस्था आज समाज की है। या तो सुयोग्य वर ही नहीं मिलते और यदि मिलते हैं तो दहेज इत्यादि के प्रश्न पर मन मुटाव हो जाता है। कन्याओं

स्वयंवर

"आज खाना क्यों नहीं भाया बेटी" गीता की मां ने प्यार से पूछा। गीता माता की बात सुनी अनसुनी कर रसोई घर से चली गई। मां का हृदय चिंता में पड़ गया। वह सोचने लगी मैंने तो आज भोजन करते समय केवल उसके विवाह के विषय में ही तो बात चीत की थी, उसको भावी जीवन के सुख व आनन्द की कल्पना के पुलकित हो उठना चाहिए किन्तु वह अनमनी क्यों हो गई। यही सोचती विचारती उसकी माता भी रसोई उठाकर गीता के कमरे की ओर चली गई।

"गीता क्या बात है ? बेटी रो क्यों रही है। गीता को सिसकते हुये देख कर उसकी माता ने कहा।

गीता ने अपना सिर उठाया और कहा, 'माता जी क्षमा कीजियेगा मैंने सब कुछ सुन लिया है। आप जिस विधुर के साथ मेरी गठबन्धन करने की सोच रही है, क्या वह मेरे लिये उपयुक्त है। बात यह है कोई भी कुमारी कन्या पत्नी बनने के साथ ही माता बनने को तय्यार नहीं हो सकती 'उसकी माता ने सिर पर हाथ फेरते हुये दुलार से कहा "बेटी" उस लड़के में हरज ही क्या है, उम्र ३१ से ज्यादा नहीं बताते। मुरादाबाद के सबसे बड़े रईस हैं। बच्चे कुल तीन ही तो हैं सो इतने पैसे में क्या भारी हैं। पलङ्ग पर बैठी हुई हुक्म चलाया करोगी जिसकी दो दो बहुएँ जा चुकी हों उसको तीसरे से अर्थात् तुमसे ज्यादा क्या होगा' वह तो आंखों पर रक्खेगा। तेरी टहल में सदा दास दासियां रहेंगी।

"माता जी आपके दृष्टिकोण से तो यह सब ठीक है किन्तु किसी भी स्वाभिमाननी कन्या को यह रुचिकर न होगा। एक कन्या को दासियां तथा धन ही सब कुछ नहीं होता। अवश्य, शिक्षा तथा आचरण इत्यादि का विवाह क्षेत्र में बड़ा महत्व है मनुष्य के अरमान तो प्रथम विवाह

में ही पूर्ण हो जाते है। दूसरी या तीसरी तो जीवन चलाने ही भर को होती है। इसलिये मेरी इच्छा ऐसे म॰ेदय को बरने के लिये तनिक भी नहीं है।

'गीता' बात यह है कि तुम्हारे पिता वचन दे चुके हैं। सुनेंगे तो बहुत नाराज होंगे। छोटे मुंह बड़ी बातें अच्छी नहीं लगती। क्या तुम मुझसे अधिक बुद्धि रखती हो, माता ने फटकारते हुये कहा।

"माता जी मैं प्रार्थना करती हूं मेरी बात मान लीजिए। यह मेरे जीवन मरण का प्रश्न है। मेरा जीवन दुखी मत बनाइये। उसने गिड़-गिड़ाते हुये कहा।

"ज्यादा जबान चलाई तो जीभ ही खींच लूंगी, कल मुंही कहीं की मुझे तुमसे यह आशा न थी कि तू इस प्रकार बातें मारेगी। निर्लज्ज कहीं की। मुझे मालूम होता तो जन्म होते ही गला घोट कर मार डालती। यह कह कर उसकी मां उसको अकेला कमरे में छोड़ कर क्रुद्ध हो चली गई।

रात्री को यकायक गीता का कमरा धुयें से भर गया। माता की आंखें खुली। वह घबराई हुई गई और देखा कि गीता ने मिट्टी का तेल छिड़क कर, आत्म हत्या कर डाली। और एक पत्र उसकी मेज पर पेपर वेट से दबा हुआ मिला पत्र को खोलकर पढ़ा गया, गीता के भाव इस प्रकार के थे।

"हमारे समाज में कन्या की दशा एक मूक पशु के समान है। भविष्य विचार कर मैंने एक अयोग्य पति के बरने में अनिच्छा प्रकट की तो माता ने मुझे कल मुंही, कुल कलंकनी आदि बुरा भला कहा। मैंने माता पिता के अनुचित दृष्टिकोण को परिवर्तित करने का प्रयत्न किया पर असफल रही। मैं अपने कुल को कलंकित करने की अपेक्षा अपने इस तुच्छ जीवन का बलिदान करने ही में अपना हित समझती हूं। मुझे आशा है कि मेरे इस बलिदान से समाज की आंखें खुलेगी तथा एक अबोध कन्या का इच्छित वर मांगना अधर्म न माना जायगा। इसी में हमारी जाति, धर्म, तथा समाज का कल्याण है।"

विवाह क्यों ?

भारतीय समाज में ऐसी अनगिनती घटनायें प्रतिदिन होती हैं। माता पिता उनका विवाह कहीं भी किसी के साथ करदें, वे अपना मुंह नहीं खोल सकती। क्यों कि यह निर्लज्जता तथा अधर्म माना जाता है। विवाह की विवेचना करने के पूर्व यह बताना आवश्यक है कि विवाह आवश्यक क्यों है। विवाह सभ्यता की पहिचान है वह नारी और पुरुष को बन्धन में नहीं प्रेम सूत्र में बांधता है। इसमें शरीर से शरीर ही नहीं मन से मन तथा आत्मा से आत्मा मिल जाती है। इससे हार्दिक इच्छायें पूर्ण होती है तथा गृहस्थी बनती है। जीवन सुख में बिताने के लिए एक जीवन साथी की आवश्यकता पड़ती है। विवाह इसी की पूर्ति है।

प्राचीन काल में भी भारतीय समाज में विवाह के बन्धन दृढ़ तथा पवित्र थे। नारियां पतिव्रत धर्म को अपने प्राणों से भी अधिक समझती थी। पुरुष भी सदाचारी तथा एक पत्नी व्रत पालन करने में दृढ़ होते थे। इस समय में हिन्दू समाज में कई प्रकार के विवाह प्रचलित थे। वैदिक रीति से स्वयंवर की विधि से तथा गन्धर्व विवाह व दैत्य-विवाह इत्यादि। वैदिक रीति से विवाह माता पिता योग्य वर ढूंढ कर हवन द्वारा अग्नि व वेद मंत्रों को साक्षी कर कन्या का पाणिग्रहण संस्कार कर देते थे। यह प्रायः सर्व-साधारण में प्रचलित था। स्वयंवर में कन्या माता पिता द्वारा निमन्त्रित सज्जनों में से एक को चुन लेती थी अथवा माता-पिता योग्यता तथा बल की कसौटी के लिए कोई परीक्षा नियुक्त कर देते थे और जो उसमें उत्तीर्ण होता था उसी को कन्या चुन लेती थी। गान्धर्व-विवाह आधुनिक प्रेम विवाह का ही एक रूप होता था। अथवा वर वधू की ही इच्छा से होता था। दैत्य विवाह एक प्रकार का अनमेल विवाह होता था जो बलपूर्वक किया था। प्राचीन काल में स्वयंवर की प्रथा का अधिक प्रचार था प्रचितर उच्च घरानों में तथा राज परिवारों में ही होता था, देश देश के राजाओं को निमन्त्रित करते थे तथा उनकी योग्यता की परीक्षा होने पर या तो कन्या जयमाला पहनाती थी या

प्रेम विवाह

आधुनिक काल के ऐसे विवाहों के अतिरिक्त नई रोशनी में पले, शिक्षित व अर्ध शिक्षित स्वतन्त्र वातावरण में रहने वाले कुछ लड़के लड़कियों का एक और प्रकार का विवाह होता है जो प्रेम-विवाह कहलाता है। हमारे समाज में पर्दे की कुप्रथा 'चीन की दीवार' के सदृश एक भारी अड़चन है जिसके कारण युवक युवतियों में परस्पर सम्पर्क न होने से उचित चुनाव होने में त्रुटियां हो जाती हैं। इसी कारण से हमारे देश में सह शिक्षा का भी प्रचार नहीं है। इसलिए जिन लड़कों को परस्पर मिलने का अवसर मिल प्राप्त हो जाता है 'आव देखें न ताव' प्रेम का प्रपँच रचने लगते हैं। वे वास्तव में अन्धे बन जाते हैं कि प्रेमान्ध 'हम एक दूसरे के हैं' इस वाक्य को रट कर प्रेम का खिलौना बना लेते हैं। ऐसों में से अधिक का का तो प्रेम तभी तक स्थायी रह पाता है जब तक माता पिता के सम्मुख प्रेम का पैगाम नहीं जाता है, क्योंकि किसी किसी के बीच में धन, कहीं विद्या, कहीं जाति आदि अड़चने इस सम्बन्ध को जोड़ने के लिए पर्याप्त हैं। जिस समय प्रेम किया जाता है, युवक युवतियाँ अपने सामाजिक बन्धनों की ओर जिनको तोड़ने की शक्ति का उनमें सर्वथा अभाव है। तनिक भी ध्यान नहीं देते। देखा गया है कि अधिकतर प्रेम युवक युवतियाँ परस्पर प्रथम सम्पर्क में आने ही या यों कहिये कि संयोगवश करने लगते हैं। ऐसे प्रेम का फल अच्छा होता नहीं देखा गया है। यदि संयोगवश प्रेमी से सब यों मिल भी जाते हैं तो भी वे सुखी नहीं हो पाते। सुखी उसे समझना चाहिए जिसका अन्त सुखी हो। ऐसे प्रेम विवाहों का अन्त अधिकतर दुखदायी होता है क्योंकि यह विवाह वास्तविक प्रेम विवाह नहीं होता। यह सच्चा प्रेम नहीं बल्कि [illegible], आवेश से उत्पन्न मन का विकार होता है जो कुछ समय [illegible] अपेक्षा करने लगता है। प्रेमी एक दूसरे को घृणा की [illegible] हैं।

[illegible] प्रेम विवाह के विरुद्ध कोई भी व्यक्ति नहीं हो [illegible] में प्रेम विवाह इस समाज दूर के रहा है जिससे

गहराई का अनुकरण करें। पाश्चात्य देशों में सहशिक्षा आदि होने के कारण वहां अधिकतर प्रेम विवाह ही होते हैं। वहां यह प्रणाली एक दृष्टिकोण से सफल ही होती है। वहां के नवयुवक व युवतियां स्वच्छन्दता से परस्पर मिलते हैं तथा पसन्द कर विवाह करने की उनको सुविधा होती है। वहां की संस्कृति तथा सामाजिक मर्यादायें उनका साथ देती है। इसके विपरीत वातावरण के कारण यहां प्रेम विवाह सफलीभूत नहीं होते जब तक स्थिति अनुकूल न हो। इस विषय में बड़ी सतर्कता की आवश्यकता है।

उपचार

भारत में फिर से एक प्रकार से प्राचीन स्वयंवर के आधार पर विवाहों का होना ही श्रेयस्कर प्रतीत होता है। नवयुवक व युवतियों को अभी तो एक दायरे के अन्तर्गत अपनी इच्छाओं को प्रकट करने की सुविधा हो। जात पात का भेद भाव दूर कर अन्तर जातीय विवाह का प्रचार भी अभीष्ट है जिससे वर कन्या को ढूंढ़ कर चुनने का दायरा बड़ा हो जाय ऊंच नीच का भेद भाव भी जाता रहेगा तथा राष्ट्रीय उत्थान भी होगा। वर-वधू ढूंढते समय उनके स्वास्थ्य, आयु, शिक्षा तथा स्वभाव आदि के सामंजस्य की ओर उचित रूप तथा धन से अधिक ध्यान देना चाहिये। धन के फेर में कदापि नहीं पड़ना चाहिये। यह वस्तु ही अधिकतर नवयुग युवतियों के अरमानों को कुचलने, जीवन पर्यन्त रोने के लिए विशेष कारण हो जाती है। स्वभाव की समानता की ओर अधिक ध्यान देना चाहिये कहीं २ पर देखा गया है कि दम्पती में सब वस्तुयें अनुकूल पाई जाती है, दोनों स्वास्थ्य भी है, धन भी काफी मात्रा में हैं, सुन्दरता भी दोनों में समान होती है फिर भी वे सुखी नहीं। इसका मूल कारण है स्वभाव का न मिलना। एक सादी प्रकृति का है तो एक फ़ैशन व तड़क भड़क पसन्द है। एक बिल्कुल पुरातन का पक्षपाती है तो एक एकदम नई रोशनी को ही सब कुछ समझे बैठा है। वर या कन्या ढूंढते समय दूसरी बातों के अतिरिक्त इन सब बातों को यथेष्ट रूप से ख्याल रखना चाहिये। इसका समाज के उत्थान में अच्छा प्रभाव पड़ेगा। गुणी

माता पिता की सन्तान भी गुणी होगी जो देश की भावी उन्नति के स्तम्भ हैं। वर्ण भेद देश की शक्ति को खोखला करता है। अन्तर जातीय विवाह से राष्ट्रीयता की नींव पक्की होती है।

हमारे समाज में 'सामाजिक सचिवालय' की स्थापना करनी चाहिये जिनका क्रियात्मक के अतिरिक्त रचनात्मक महत्व भी हो जो जनता को आदर्श विवाह करने के लिये पूर्ण सुविधायें तथा सनातनादे तथा अनमेल विवाह करने से दण्ड दे सके। आदर्श विवाह वही होगा जो अवस्था रूप और स्वस्थता तथा योग्यता में साम्यका पूर्ण ध्यान रखता हो। कन्या तथा वर की डाक्टरी निरीक्षण भी करा लेना चाहिये। क्योंकि बाद में इस विषय की भी बहुत सी त्रुटियां दाम्पत्य जीवन को दुखदायी बना देती है।

विवाह की समस्या प्रत्येक नवयुवक व युवती के लिए उसके जीवन में सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती है। जिस प्रकार सुयोग तथा सुदृढ़ और ठीक से फिट किये गये यन्त्र ही उत्तम उत्पादन तथा सम्पन्नता के साधन हो सकते हैं उसी प्रकार मानव–यन्त्र जिसके नर और नारी दो मुख्य पुर्जे हैं उनक उपयुक्त मिलन ही योग्य सन्तान की उत्पत्ति का साधन बन सकते हैं और पराक्रम शाली सन्तति उत्पन्न करवा सकता है।

गृह-लक्ष्मी

भारत की स्वतन्त्रता, वैभव तथा समृद्धि-शीलता सम्पूर्ण जग में प्रसिद्ध थी। इसी कारण बड़े बड़े विदेशी, इतिहासज्ञों कवियों ने भी हमारे देश की कीर्ति की [illegible] शब्दों में कभी बखान नहीं किया। कृषि प्रधान देश होने के कारण तथा पाश्चात्य वस्तुओं का प्रचार न होने के कारण यहाँ के लोग स्वतन्त्रता पूर्वक जीवन बिताने में आनन्दपूर्वक अपना गौरव समझते थे। दिन भर खेतों परिश्रम कर सीधा सादा जीवन बहना तथा सुचारु रूप से गृहस्थी चलाना ही उन लोगों का मुख्य ध्येय था। नारियां सुशिक्षित तथा धर्मपरायणा होती थीं। उस समय की सामाजिक स्थिति वास्तव में प्रशंसनीय थी। धार्मिक विचार सर्वोपरि होने के कारण यहाँ चारों ओर सुख और शान्ति का राज्य था। देश की इस स्थिति को उत्पन्न करने में नारी समाज का मुख्य हाथ था। नारियां वास्तव में गृहलक्ष्मियां तथा सर्वाधिकारिणी होती थीं। नारियों को शिक्षा इस ध्येय से नहीं दी जाती थी कि शिक्षित होने से सुयोग्य वर मिलने में सुविधा होगी वरन उनको अपने भावी जीवन को सफल बनाने के लिये भवसागर को पुरुष के कन्धे से कन्धे भिड़ कर पार करने के लिये तथा गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश कर ऐसा रूप धारण करने के लिये जिससे देश का सन्तति का समाज, तथा स्वयं अपनी गृहस्थी का सुधार हो सुशिक्षित किया जाता था। उस समय की शिक्षा प्रणाली वास्तव में सफल हुई और भारत की देवियों को इसने महान बना दिया। वे गृह कार्य में बहुत दक्ष और निपुण होती थीं। दाम्पत्य जीवन के वास्तविक रूप को भी उस समय की नारी पूर्ण रूप से समझती थीं और बड़ी कर्त्तव्य परायण होती थीं। देश में गोवध तथा मांस भक्षण का निषेध था। गउओं की माता के समान सेवा करने के कारण देश में दूध घी की नदियां बहती थीं।

आज वही भारत जिसका वैभव संसार के अन्य देशों से श्रेष्ठ था पतन तथा अज्ञान के गर्त में गिरा है। जहां घी दूध की नदियां बहती

थी वहीं पर आज स्त्री पुरुष अन्न के दाने २ को तरसते हैं। देश की आर्थिक स्थिति इतनी चिन्ताजनक है कि मनुष्यों को भर पेट भोजन भी नहीं मिलता। इसका मुख्य कारण द्वितीय महायुद्ध है। महायुद्ध से पहले देश में वस्तुओं का उत्पादन आवश्यकता से अधिक होने के कारण वे सस्ती थीं तथा मिलने में सरलता होती थी किन्तु मनुष्यों की आय इतनी कम थी कि साधारण गृहस्थी भी चलाने में बहुत कठिनाई होती थी। महासमर के प्रारम्भ होने से देश में जीविकोपार्जन के साधनों का तो अभाव न रहा लेकिन वस्तुओं का मूल्य उनका उत्पादन कम होने के कारण तिगुना चौगुना हो गया। इस परिस्थिति ने ऐसा भीषण रूप धारण कर लिया कि मनुष्यों को जीवन निर्वाह करना कठिन हो गया। आज देश की जो स्थिति है वह किसी से छिपी नहीं है। देश में वस्तुओं का तो इतना अभाव है कि तिगुनी -चौगुनी कीमत पर भी नहीं मिलती कहीं पर जल का अभाव, तो कहीं पर टिड्डी लग जाने से देश को महान अन्न संकट का सामना करना पड़ रहा है। यह अन्न संकट की विषम समस्या भारत के लिए ही नहीं, वरन समस्त संसार के सन्मुख उपस्थित इस समय स्वतन्त्र भारत की खाद्य समस्या उसकी सबसे बड़ी समस्याओं में से एक है। यही अवस्था वस्त्रों की भी है। वस्त्र और भोजन जीवन की दो प्रमुख आवश्यकतायें पूर्ण करना सबके लिए प्रमुख समस्याऐं हैं।

भारत की इस आज की परिस्थिति को देखते हुये गृहस्थ जीवन का कैसे संचालन हो? उसकी कैसी व्यवस्था हो? नारी को किस रूप को त्याग कर किस रूप को धारण करना चाहिये जिससे अपने गृहस्थ तथा सारे देश का कल्याण हो यह समस्या नारियों के समक्ष एक विकट और तात्कालिक रूप में उपस्थित है! नारी ही गृह के स्तर को उठा सकती है अपनी अकर्मण्यता से उसे वह ही गिरा भी सकती है इसी कारण नारी को एक ओर तो गृह 'लक्ष्मी' की उपाधि दी गई है दूसरी ओर वही 'फूहड़नारी' भी कहला सकती है पुरुषों का कार्य तो धन कमाना है व्यय करना तथा गृहस्थी की व्यवस्था व उसका सुचारु रूप से संचालन करना मुख्यतया नारी का ही कार्य है। आज कहा धन की मितव्य

तथा उपयुक्त उपयोग ही नारी की योग्यता व अयोग्यता के द्योतक हैं। गृहस्थ जीवन में, प्रत्येक परिस्थिति में (१) भोजन (२) वस्त्र (३) निवास स्थान (४) बच्चों का पालन पोषण तथा शिक्षा (५) चिकित्सा (६) भविष्य के सम्बन्ध इत्यादि में धन व्यय करना अनिवार्य है।

भोजन–भोजन बनाते समय इस बात का पूर्ण रूप से ख्याल रखना चाहिए कि कोई खाद्य पदार्थ व्यर्थ तो नहीं जाता जितना खाइये, उतना पकाइये, के इस सिद्धान्त का कड़ाई से पालन होना चाहिये और भोजन इतना ही बनाना चाहिये जितने की घोर आवश्यकता हो। क्योंकि बासी भोजन खाना घर में औषधि-व्यय में वृद्धि करना। तथा डाक्टर को न्योता देना है। अन्न का एक दाना भी लापरवाही से नष्ट न होने देना चाहिये। क्योंकि गेहूँ के राशन में से जो नाज हम व्यर्थ समझ कर बीन कर फेंक देते हैं या पलोथन में आटा प्रयोग करते हैं सैकड़ों मनुष्यों का जीवन उसी पर निर्भर होता है। भोजन इत्यादि तथा शुद्ध रूप में बना कर खाना चाहिए। जिनसे स्वास्थ्य की वृद्धि हो सस्ते फल व शाक भाजी का भी कुछ प्रयोग करना चाहिये। घी दूध का बहुत अभाव है। इसका ऐसे प्रयोग करना चाहिए जिससे स्वास्थ्य के लिये हितकर हो। पूरी पकवान में घी लगाना तथा खीर खड़ी में दूध का प्रयोग करना इन अलभ्य वस्तुओं का दुरुपयोग करना है। दाल शाक भाजी में घी का प्रयोग तथा शुद्ध दुग्ध पीना स्वास्थ के लिये लाभदायक है। हमको जीने के लिए खाना चाहिये न कि खाने के लिये जीना चाहिये। किस ऋतु में कौन सी वस्तु का उपयोग उपयुक्त तथा गृह के किस मनुष्य के लिये कौनसा भोजन अनिवार्य है तथा अपनी आय में कौनसा भोजन बना कर ही आर्थिक स्थिति को ठीक ठीक रखा जा सकता है इन ही बातों की सुव्यवस्था से ही नारी की दक्षता है। इन बातों को पूर्ण तथा कार्यान्वित करने वाली नारी ही गृह लक्ष्मी और 'अन्नपूर्णा' कहला सकती है।

वस्त्र

भोजन के साथ साथ वस्त्र भी प्रत्येक मनुष्य के लिये आवश्यक है। आज की परिस्थिति के अनुसार ...

किन वस्त्रों की अपेक्षा कौन सा वस्त्र अनिवार्य है यह एक कुशल गृहणी को जानना चाहिये बच्चों के लिये रेशमी व कीमती वस्त्र बनाना पैसा व्यर्थ में फेंकना है। उनके लिये तो सादे तथा सरलता पूर्वक धुलने वाले वस्त्र ही उपयुक्त होंगे। गृह में अन्य व्यक्तियों के लिये भी शीतकाल के लिये रेशमी वस्त्रों की अपेक्षा गर्म वस्त्र बनाना उपयुक्त है। राष्ट्रपिता बापू जी के अचूकनीय अस्त्र चरखे का प्रयोग करने से भी वस्त्रों की समस्या सहज ही में हल की जा सकती है। दस्तकारी ऐसी ही करनी चाहिए जो गृहस्थी की मितव्ययता में सहायक हो। नारी का गृह के प्रत्येक मनुष्य की आवश्यकता का ख्याल रखना चाहिए। चाहे वह पूर्ति खादी तथा मोटे वस्त्रों से ही क्यों न हो। "वधू को तो इस अवसर पर पचास रु० की साड़ी बनाना तो अनिवार्य है चाहे अन्य गृह सदस्यों को तन ढकने लायक कपड़ा भी प्राप्त न हो। ऐसे विचारों का त्याग कर देना ही हितकर है। पहले सबकी आवश्यकता की ओर ध्यान देना चाहिये। प्रायः बड़े कपड़े फट जाने पर उनको फेंक दिया जाता है। उनमें काट छांट कर छोटे बच्चों के वस्त्र बहुत ही आसानी से बनाए जा सकते हैं। कपड़ों को जहां तक हो सके घर पर ही धोना चाहिये। क्योंकि घर पर कपड़े धोने से कम फटते हैं तथा थोड़े वस्त्रों में ही काम चलाया जा सकता है। प्रायः देखा जाता है। कि कुछ बहनें फटे कपड़े, छोटे बर्तन इत्यादि के लोभ में आकर बरतन वाला बेचने को दे देती हैं। उन कपड़ों को यदि अपने सेवकों को दिया जाय तो कितना लाभ हो। वे मनुष्य जरा सी चीजों का लालच देकर बहिनों से कपड़े ले जाते हैं तथा उनमे गरीबों का शोषण करते हैं। इस लिये वस्त्रों को इस प्रकार के लोभ में आकर न देना चाहिए। बल्कि उनसे गरीब भाइयों की इस वस्त्र संकट में सहायता करनी चाहिए।

निवास स्थान

निवास स्थान व्यवस्था की ओर नारियों को पूर्णतया ध्यान देना चाहिए क्योंकि निवास स्थान उत्तम तथा उपयुक्त न होने के कारण रोगों का प्रकोप जल्द ही होता है। गृह में यदि सूर्य का प्रकाश न

नारी और वेष-भूषा

गत मास के अन्तिम सप्ताह में मुझे एक विवाह उत्सव में सम्मिलित होने के लिए सपरिवार मेरठ जाना पड़ा। मेरठ जाने वाली गाड़ी में विलम्ब होने के कारण, हम दिल्ली स्टेशन पर बैठे प्रतीक्षा कर रहे थे। यकायक एक बीस वर्षीय भारतीय रमणी चहल-कदमी करती हुई दृष्टिगोचर हुई। उसके ठाट-बाट तथा बनाव-शृंगार को देखकर लोगों की नजर उस पर उठ ही जाती थी। उसकी वेष-भूषा आश्चर्यजनक और असंगत प्रतीत होती थी। मुख पर क्रीम पाउडर, सुर्खी तथा होठों की लाली तो साधारण-सी बात प्रतीत होती थी। केशों की दो चोटियां—जिन पर पुष्पों का जूड़ा बंधा था तथा सुगन्धित तेल या इत्र का प्रयोग भी इस रमणी ने खूब खुलकर किया था। इसने आस-पास से गुजरने वालों को अपनी ओर आकृष्ट करने में कोई कसर न उठा रखी थी। इस पर समस्त शरीर पर बहुत महीन वायल की दुग्ध-सी श्वेत एक साड़ीनुमा आस्तीन-रहित ब्लाउज व उसी के साथ की एक तंग इजार जो कि अंगों से लिपटी हुई थी, वह धारण किए थी। ये वस्त्र इतने महीन होने पर भी कलफदीन थे और उसके अंग-प्रत्यंग को ढकने में जरा भी सफल नहीं होरहे थे। उसके रंग ढंग से अनुमान होता था कि वह कोई वेश्या है। लेकिन बाद में ज्ञात हुआ कि वह किसी भारतीय अफसर की मनोनीत धर्मपत्नी है। यह सुनकर दांत तले उंगली दबानी पड़ी और यह विचार मनमें आया कि भारतीय नारी जाति आधुनिकता के रंग में डूबकर कितनी निर्लज्ज होगयी है। इस प्रकार की वेष-भूषा के उदाहरणों का देश में अभाव नहीं। प्रश्न उठता है कि होना क्या चाहिए?

महत्व

लज्जा स्त्रियों का एक विशेष गुण है। लज्जा को स्त्रियों का भूषण भी बताते हैं। यद्यपि लज्जा और शील नारी के

आन्तरिक गुण माने जाते हैं, इनका बाह्य वस्तुओं से कोई घनिष्ट सम्बन्ध नहीं किन्तु जैसे कोमल बोली और सद्-व्यवहार लज्जायुक्त होने के आन्तरिक गुण साधन हैं उसी प्रकार नारी के वस्त्र तथा उसके पहनने का ढंग भी उसकी लज्जा और शील की साक्षी देते हैं। किसी मनुष्य के चेहरे के देखने से उसके व्यक्तित्व का अच्छा अनुमान लगाया जा सकता है। उसी प्रकार नारी के वस्त्रों, शृंगार तथा वेषभूषा और रहन सहन का ढंग देखकर उसके चरित्र और गुणों का पूरा आभास मिलता है। इसलिये वेष-भूषा की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

अतीत

बहुत प्राचीन काल में सभ्यता के पूर्व तो मनुष्य नग्न-सा ही रहता था। कुछ समय उपरान्त ज्ञान का बोध होने पर अंगों को ढकने के लिये वे वृक्षों पल्लवों तथा त्वचा को प्रयोग में लाने लगे। ज्यों-ज्यों जागृति होती गयी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ साथ वस्त्र का भी आविष्कार हुआ समय के साथ साथ भाँति-भाँति के वस्त्रों का उत्पादन तथा उपयोग बढ़ा। मनुष्य शरीर को सुसज्जित करने के लिए वस्त्रों का अनेक प्रकार से प्रयोग करने लगा तथा स्वर्ण और चांदी के आभूषण भी प्रयोग में आने लगे। विभिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न वेष-भूषा प्रचलित हुई। पंजाब, गुजरात, दक्षिणी प्रान्तों तथा संयुक्तप्रान्त व मारवाड़ इत्यादि की नारियां भिन्न-भिन्न रूप से वस्त्र धारण करती हैं। पञ्जाब में कुर्ता, सलवार तथा चुन्नी पहनने का आम रिवाज है। दक्षिणी प्रान्तों में नारियां सात गज की लांगदार धोती व कुरती पहनती हैं। संयुक्तप्रान्त में नारियों में धोती कमीज या ब्लाउज और पेटीकोट पहनने का रिवाज है। मारवाड़ में आभूषणों पर वस्त्रों से अधिक ध्यान दिया जाता है। धोती की अपेक्षा 'लहंगा' या 'लूगड़ा' का प्रचार है। अन्य, प्रान्तों की वेश-भूषा की. अपेक्षा उनकी वेश-भूषा अधिक कीमती होती है।

क्योंकि मारवाड़ियों में ज्यादा विवाह व मौके को नृत्य के अवसर पर प्रयोग में लाती हैं।

क्या हो ?

इस छोटे से लेख का अभिप्राय प्रत्येक प्रान्त व जाति की नारियों के वस्त्रों पर टीका-टिप्पणी करना नहीं। मतलब केवल यह है कि नारी अपने रीति रिवाजों व जाति की परम्परा के अनुसार चाहे कैसे भी व किसी भी प्रकार के बने हुए वस्त्रों को धारण करे किन्तु वे वस्त्र कैसे हों तथा कैसे उनको धारण किया जाय ताकि मान में वृद्धि हो, हमारे समाज, देश व स्वयं नारी जाति के लिये हितकर हो। वस्त्र धारण के साथ-साथ नारियां कैसा बनाव-श्रृंगार करें जो वाह्य समाज को संगत प्रतीत हो। यही बातें विशेषकर विचारणीय हैं।

कैसे हों ?

नारियों को वस्त्रों में सादगी व स्वच्छता को तड़क-भड़क की अपेक्षा अधिक महत्व देना चाहिये खद्दर के या मोटे वस्त्र स्वच्छ और ठीक से सिले हों तो रेशमी व कीमती वस्त्रों से जो धुलने में सुविधा न होने के कारण गन्दे होजाते हैं श्रेष्ठ है। इस साड़ी के साथ कैसा ब्लाउज या इस आभूषण व वस्त्र के साथ कैसे चप्पल या सैंडिल हो इस पर विशेष ध्यान देने में कोई हर्ज नहीं। प्रायः देखा जाता है कि कुछ बहनें सर से लेकर पैर तक खूब जेवर पहने रहती हैं। उस पर वस्त्र कितने भी गन्दे क्यों न हों रेशमी ही होने चाहिए। इसके साथ-साथ आधुनिक रिवाज के अनुसार वह सैंडिल भी पहनने का शौक पूरा करती हैं। इसी तरह से बहुत-सी बहनें पुराने रिवाज के अनुसार लहंगा, दुपट्टा पहनती हैं। फिर इसके साथ पाउडर, सैंट तथा होठों की लाली इत्यादि लगाने में भी संकोच नहीं करतीं। बहनों को यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि किस वस्त्र के साथ कैसा बनाव श्रृंगार शोभा देता है। साड़ी के साथ ब्लाउज सैंडिल चाहे वह कैसे भी क्यों न हों खप सकती हैं। इनको पहनने के साथ आभूषण बहुत कम व साधारण होने चाहिये तथा पैरों में कोई भी आभूषण शोभा

नहीं देना। मैं तो अधिक जेवर पहनने की पक्षपाती ही नहीं क्योंकि इनसे शरीर की स्फूर्ति नष्ट होजाती है और वे अंग मैल जम जाने के कारण काले पड़ जाते हैं। इसी प्रकार [illegible] तथा होंठों की लाली इत्यादि वस्तुओं का भी प्रयोग नहीं [illegible] क्योंकि इस से मुख प्राकृतिक शोभा नष्ट हो जाती है। इन अप्राकृतिक वस्तुओं के प्रयोग से हम प्राकृतिक [illegible] को नहीं पहुंच सकते हैं। इसलिये व्यर्थ ही पैसा नष्ट होता है। [illegible] चाहे हम किसी भी प्रकार के वस्त्रों से सुसज्जित [illegible] सिर ढकने की व्यवस्था अवश्य होनी चाहिये। सिर ढकना भी [illegible] है यह समझना यथार्थ में भूल है। जिस प्रकार नग्न मस्तक हो तथा चरण छूकर बड़ों के प्रति आदर प्रगट किया जाता है उसी प्रकार [illegible] बड़ों को देख कर सिर ढकना भी उनके प्रति आदर प्रकट करना है। इसलिये हमारी वेष-भूषा में अवसर पड़ने पर [illegible] की व्यवस्था होनी चाहिये। शृंगार करते समय सुहाग [illegible] अवश्य ध्यान रखना चाहिये। समय व स्थान को देखकर [illegible] आवश्यकता हो वहां वैसा शृंगार करना चाहिये। शृंगार में [illegible] नष्ट नहीं करना चाहिये तथा स्वदेशी व सादी वस्तुओं का प्रयोग में लाना चाहिए। नृत्य में ज्यादा तड़क-भड़क के वस्त्र नहीं पहनना चाहिये। ऐसी वस्तुओं का प्रयोग नहीं करना चाहिये जो नारियों को आकर्षक बनाकर पुरुषों की वासना उत्साहित करें। क्योंकि [illegible] के अलावा और भी मनुष्य आते-जाते रहते हैं। इसलिये ऐसे वेष में रहने से 'कुछ करता कुछ नाम चढ़ा' वाली कहावत चरितार्थ हो जाता है। क्योंकि बहुत से मनुष्य संयम रखने में निर्बल [illegible] हैं। उन पर से नारियों का यह ढंग वासना उत्पन्न कर देता है। 'करो कन्धे का न्योंते जा और दो को बुलाय।'

प्रायः देखा जाता है कि विधवाओं पर चाहे वे कितना भी कम [illegible] की क्यों न हों उनके शृंगार तथा वेष-भूषा पर [illegible] और नियन्त्रण लगाया जाता है। इन पर नाना प्रकार की टीका-टिप्पणी होती है।

विधवाओं को उन वस्तुओं को छोड़कर जो सुहाग के लिये विशेष चिन्ह मानी जाती हैं। अन्य वस्तुओं का प्रयोग करना निषेध नहीं समझना चाहिये। क्योंकि ऐसा करने से वे अपनी स्थिति संसार तथा समाज में बहुत ही निम्न समझने लगती हैं। उनके वैधव्य का दुःख दूना बढ़ जाता है। यदि वह किसी शुभ अवसर पर अच्छे वस्त्र इत्यादि धारण भी करलें तो कोई अन्याय नहीं। इसी प्रकार कुमारी कन्याओं की वेष-भूषा में भी सावधानी की आवश्यकता है।

यात्रा का परिधान

नारियों को यात्रा करते समय अपनी वेष-भूषा का विशेष ख्याल रखना चाहिये। भड़कीले तथा दिखावटी वस्त्रों की अपेक्षा सादे व स्फूर्तिदायक तथा इस ढंग के बने हुए वस्त्रों का प्रयोग करना चाहिये जिससे अशिष्टता तनिक भी न प्रकट होती हो। नारियों को यात्रा में आभूषण तनिक भी नहीं पहनने चाहिये क्योंकि कभी २ यह उनके जीवन तथा सतीत्व तक को खो देने तक का अवसर देते हैं। अधिक बनाव-शृंगार करके नहीं निकलना चाहिए क्योंकि राह में सभी प्रकार के मनुष्य मिलते हैं जो उनको कुदृष्टि से देखते हैं। यात्रा करते समय अपने को निर्बल व नाजुक गुड़िया न समझना चाहिये। सावधानी तथा स्फूर्ति से रहना चाहिये। यात्रा में कभी-कभी नारियां ऐसी परिस्थिति में रह जाती हैं कि यदि वह स्फूर्ति, सावधानी तथा साहस खो दें तो बड़ी से बड़ी हानियां उठानी पड़ती हैं। इसके सैकड़ों उदाहरण नित्य सामने आते हैं। मैं इसी मासके प्रारम्भ में झांसी वापस आयी,मेरे गले में कुछ आभूषण पड़े थे जो जल्दी के कारण बक्स में न रखे जा सके थे। झांसी स्टेशन पर रातको १२ बजे हम आ गये। मेरे पतिदेव प्लेटफार्म से बाहर सामान रखाकर तथा मुझे वहांपर बैठा कर किसी कार्यवश प्लेटफार्म पर पुनः चले गये। यकायक एक मनुष्य जो गुण्डा प्रतीत होता था शायद गले के भूषणों को देख-कर आया और कहने लगा तुम्हारे पतिदेव तुमको [illegible] बुला रहे हैं। मेरे डांटने-फटकारने-पर और दूसरे लोग उसको [illegible] ले गये। यदि मैं उस समय सावधानी से कार्य न करती तो वह

तो बालक के जन्म पर ही उसके जेवर केलिए उतावली हो जाती हैं। उनको नाना प्रकारके रेशमी वस्त्रों से सुसज्जित करने तथा जेवर पहनाने-में ही वे अपना गौरव समझती हैं। बच्चोंको इस प्रकारसे सुसज्जित करनेमें बहुत-सी हानियां हैं। जेवर पहनाने से बच्चा के जीवन तक का भय रहता है। जेवर के लोभसे बच्चों को गायब करना कोई नयी बात नहीं। रेशमी वस्त्र उनके लिए क्षणिक होते हैं। नित्य धुल न सकने के कारण ये शीघ्र ही खराब होकर स्वास्थ्य को हानि पहुंचाते हैं। इसलिए बच्चों को आभूषण रहित रख सादे व स्वच्छ वस्त्र पहनाने चाहिये।

राष्ट्रीय वेश-भूषा

यह भी आवश्यक नहीं कि हम सर्वदा मोटे ही वस्त्र पहनें, किन्तु रुचि स्थिति, सभ्यता तथा समाज को ध्यान में रखकर उचित वस्त्र धारण करने चाहिये। वस्त्र तो सुविधाके अनुसार ही पहनने चाहिये किन्तु वे भड़कीले, विशेष उत्तेजना उत्पन्न करने वाले कदापि नहीं होने चाहिये। वस्त्रों से मनुष्य का व्यक्तित्व प्रकट होता है। संसार के सभी देशों में राष्ट्रीय वेश-भूषा प्रचलित है। किन्तु दुर्भाग्यवश हमारे देश में विशेषकर नारी जगत में इसका सर्वथा अभाव है। यदि हमारे देश में भी हमारी कोई राष्ट्रीय वेश-भूषा निर्धारित हो जाय तो सबको बहुत ही प्रिय और हितकर होगा। इससे कितने ही लाभ होंगे। बहुत से भेदभाव दूर होकर पारस्परिक समानता के सद्भाव की जड़ जमेगी। एकता और शक्ति उत्पन्न होगी। भारत की नारी जाति के गौरव में संसार के नेत्रों में वृद्धि होगी। हम स्वतन्त्रता के द्वार को लांघ चुके हैं और दूसरे योरपीय देशों के सदृश्य आज हमारे देश को और नेताओं को आदर्श वीर रमणी सेना घोर की आवश्यकता है। हमारी वेश-भूषा का राष्ट्रीयकरण इसके निर्माण में अत्यन्त सहायक हो सकता है। यह आशा भी की जाती है कि इस के नैतिक प्रभाव के कारण सारी नारी जाति का परम कल्याण होगा।

आँख की शर्म

कुछ समय हुआ दिल्ली स्टेशन पर दो बरातें आकर ठहरीं। नव-वधुयें दोनों के साथ थीं। एक को रेवाड़ी तथा दूसरी को [illegible] जाना था। रात्रि का समय था। दोनों की गाड़ी में [illegible] था [illegible] दोनों को एक ही विश्रामगृह में बैठा दिया गया। गाड़ी के [illegible] अचानक आ जाने के कारण जल्दी ही एक बाराती आया और लम्बे घूंघट तथा घोर परदे में छिपी होने के कारण अपनी वास्तविक वधू को छोड़कर दूसरी वधू को ले गया। कुछ समय बाद ही जब [illegible] गाड़ी आई और दूसरे लोग भी वधू को लिवाने आये, सहसा [illegible] उनकी ओर गया और वे अपनी वास्तविक वधू को न पाकर बहुत परेशान हुये। उन्होंने पहले वाली गाड़ी के लिये आगे के स्टेशनों पर टेलीफोन किया। बहुत ही कठिनाइयों के उपरांत वे अपनी वास्तविक वधू के पाने में सफल हुये।

परदे के इस बाह्य आडम्बर के कारण हमारे समाज में कभी कभी ऐसी दुर्घटनाओं का होना कोई नई बात नहीं। परदे के अन्दर वस्त्रों में लिपट कर बण्डल-सी बनी हुई वधुओं को पहचानने की असमर्थता शायद इनके भाग्य को ही पलट देती है। प्रश्न उठता है कि ऐसा बन्धन क्या हमारे समाज के लिये अनिवार्य ही है? क्या परदे के भीतर रहने वाली वधुओं को इस प्रकार पंगु बनाकर ही उनके शील तथा लज्जा की रक्षा की जा सकती है? क्या इस बन्धन को ढीला करने का कोई मार्ग नहीं? हमारी परम्परा और वास्तविक स्थिति का ज्ञान होने पर ही समाज का कल्याण हो सकता है। परदे का वास्तविक रूप है 'आँख की शर्म' तथा इसका ही परदा होना चाहिये।

अतीत काल में

परदा जिसका नारी समाज में अभी तक इतना महत्व है क्या अतीत एवं अथवा महाकाव्य काल से ही प्रचलित है? प्राचीन इतिहास के बड़े

बड़े ग्रन्थ, वेद तथा महाकाव्यों को पढ़ने में उस समय की स्त्रियों की स्थिति और उनके व्यवहार का ज्ञान होता है। आजकल परदे में रहने वाली निर्बल तथा भीरु अबलाओं के विपरीत उस समय की नारियां अपने पतियों तथा अपने सम्बन्धियों के साथ आखेट, युद्ध, सैर-सपाटे, धार्मिक हवन, यज्ञ तथा अन्य कार्यों में समान सहयोग देने में ही अपना गौरव समझती थीं। परदे का वास्तविक जन्म भारत में यवनों के प्रवेश से हुआ तत्कालीन राजनीतिक स्थिति तथा सामाजिक वातावरण ही ऐसा था कि नारी समाज को बाध्य होकर ही परदे की बेड़ियों में जकड़ना पड़ा। यह बेड़ियां अब इतनी जटिल हो गई हैं कि उनको नारी जाति के मानसिक, सामाजिक ह्रास तथा अवनति का एक मुख्य कारण जानते हुये भी आज बड़े बड़े दिग्गज सुधारक भी उनको तोड़ने में असमर्थ हैं।

परदे की हानियां

यवनों के धार्मिक विद्वेष जनित अत्याचारों तथा दूषित राजनीतक वातावरण का नारी जाति पर आतंक छा गया और परदे की आवश्यकता प्रतीत हुई। यह प्रथा जितनी हानिजनक है उतनी ही दुःखदायक भी है। कोई धर्म शास्त्र इसकी व्यवस्था नहीं देता, यह तो लोक लाज के कारण ही प्रचलित है। बड़े बड़े सुधारक भी इस प्रथासे छुटकारा पाने में असमर्थ हो रहे हैं। परदे से नारियों के स्वास्थ्य पर बहुत भयंकर प्रभाव पड़ता है। शुद्ध हवा पूर्ण रूप से प्राप्त न होने के कारण उनका शारीरिक विकास ही नहीं हो पाता। वे नाना प्रकार के रोगों से ग्रस्त होकर निस्सहाय हो जाती हैं। वे अपनी आत्म रक्षा करने में भी असमर्थ हो जाती हैं यहां तक कि वे अपने घर के पास की गलियों में ही राह भूलने के संकट में पड़ जाती हैं। परदे के कारण स्वतन्त्रतापूर्वक घूम फिर तथा उठ बैठ न सकने के कारण उनका मानसिक विकास कुंठित हो जाता है। उनके घर की चहारदीवारी की बात ही उनके लिए जगत की बात होती है। परदे में रहने से उनके शरीर की स्फूर्ति नष्ट हो जाती है। वे घूंघट के कारण छुईमुई के पेड़ की तरह संकुचित रहती हैं। परदा करके जब नारियां कहीं मेले, तमाशे में जाती हैं तो उचक उचक कर तथा मुड़ मुड़कर

इधर उधर देखकर चलती हैं। इधर पुरुष उन परदानशीनों को इन्द्र की अप्सरा जानकर देखने के लिए उत्सुक हो जाते हैं। इस प्रकार स्त्री और पुरुष दोनों की ही शिष्टता का विनाश हो जाता है। यदि नारी घूंघट विहीन सीधी चाल से चलती है तो पुरुष भी देखने के लिये उतावले नहीं होते। इस प्रकार से दोनों की शिष्टता का ह्रास नहीं होता। परदे से नारियों की शिक्षा में भी बहुत अड़चन पड़ती है। वे न कहीं आ सकती हैं न जा सकती हैं फिर शिक्षा का प्रश्न ही क्या रह जाता है। वे संसार की सब बातों से अनभिज्ञ रहती हैं तथा उनको समझने में भी असमर्थ रह जाती हैं।

प्रायः परदा गृह-सम्बन्धियों तथा परिचित मित्रों से ही अधिक किया जाता है। नारियां अपरिचित पुरुषों के सामने परदा न करने में कोई भी हानि नहीं समझती। इस प्रकार गुण्डे पुरुष को अपना जाल फैलाने का अवसर प्राप्त हो जाता है। उदाहरणार्थ ससुर और वधू को ही ले लीजिये। यदि संयोगवश ससुर और वधू को एक साथ यात्रा करने की आवश्यकता पड़ जाती है तो यात्रा लम्बी होने के कारण तथा वधू भीरु प्रकृति की होने के कारण उन्हें एक साथ ही बैठना पड़ता है। ऐसी अवस्था में वधू परदे के कारण ससुर के पास तो कैसे बैठे और इतनी देर तक परदा करना भी बहुत ही असुविधा जनक होता है। अतएव वह पूजनीय ससुर के दूसरी ओर ही मुख करके बैठती है। जिधर अनेकों अपरिचित और उनमें से अनेकों खल भी होते हैं और छेड़खानी करने तथा बोली बोलने में नहीं चूकते। वे जानते हैं कि वधू ऐसे सम्बन्धी के साथ है जिससे वह परदे के कारण शिकायत करने में असमर्थ है। इस दिशा में शिष्ट पुरुष श्वसुर के पास या उसकी ओर मुख करके बैठना ही पुत्र वधू के लिए अधिक शील व सुरक्षा संयुक्त है। इसी से स्त्रियों को नित्य के व्यवहार में शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। परदे के ऐसे बहुत से उदाहरण मिलते हैं जिनसे गुण्डों को तो अवसर मिलता है लेकिन हितैषियों से संरक्षण नहीं मिलता।

मारवाड़ी समाज में स्त्रियां घूंघट तो खूब लम्बा काढ़ लेती हैं। लेकिन अधिकतर उनका नाभिस्थल नग्न ही रहता है। इस प्रकार के परदे

से क्या लाभ ? नारियां अधिकतर सड़कों पर पर्दा डालकर चलती है
एक तो पर्दे में रहने के कारण उनको मार्ग का ज्ञान वैसे ही नहीं होत
दूसरे पर्दा गिरने पर तो ठगी वालों को मनमानी करने का अवसर प्रा
हो जाता है। वे दूसरे मार्गों पर ले जाकर संकट में डाल देते हैं।

बहुत से व्यवसायी पण्डित, अमीरों के यहां घरेलू कामकाज
लिये यवन सेवक रखने का प्रचार होता है। पर्दानशीन देवियों पर इन
विशेष कृपा होती है। ऐसा होने पर पर्दे का मतलब ही क्या रह जा
है। गत साम्प्रदायिक दंगों मे नारियों को बहुत-सी हानियां उठानी प
और नारी अपहरण की सहस्रों घटनायें इन्हीं सेवकों द्वारा हुईं। ऐ
पर्दे से बिना परदा ही भला घूंघट का निर्भर कर। कहां तक हमा
बचाव कर सकता है ? इसमें सुधार की बड़ी आवश्यकता है।

वास्तविक परदा

मेरा यह अभीष्ट कदापि नहीं है कि नारियां वास्तविक पर्दा या
आंख की शर्म को त्यागकर बिलकुल निर्लज्ज हो जाय। प्रत्युत यही अभि
है कि बाह्य आडम्बर घूंघट को त्याग कर अपने नारीत्व की पूर्ण र
से रक्षा करनी चाहिये। प्रायः देखा जाता है तीर्थ स्थानों व गंगा घ
पर जैसे हरिद्वार में 'हर की पैड़ी' इत्यादि पर नारियों के लिए विशेष घ
होने पर भी नारियां मरदाने घाटों पर स्नान करने में संकोच नहीं करतं
सैकड़ों पुरुषों के सम्मुख गीले व महीन वस्त्रों का अङ्गों से चिपकना कित
अवांछनीय होता है। इसी प्रकार के अनगिनत उदाहरण मिलते
जिनसे प्रगट होता है कि नारियां परदे के आड़ में रहकर ऐसे अने
कार्य करती हैं जिनसे निर्लज्जता प्रकट होती है। घूंघट काढ़कर मार्ग
अश्लील गायन गाते हुये चलना, परदा कर सड़कों पर लड़ना इत्यादि
आदरणीयों जैसे श्वसुर ज्येष्ठ से तो बोलने में भी अड़चन समझी जाती
किन्तु बनावटी साधु सन्तों, सयानों दीवानों, पीर ओझाओं के सम
झाड़-फूंक कराने में तथा उनके चरण छूने में कोई निर्लज्जता
ी जाती। इसलिये घूंघट से वास्तविक लज्जा की रक्षा तो होती
एक बाह्य आडम्बर मात्र रह जाता है। उसकी आड़ को लज्जा

राम सीता

रमेश स्थानीय इन्जीनियरिंग विभाग में साधारण कर्मचारी था। किन्तु फिर भी लक्ष्मीदेवी की उसपर विशेष कृपा थी। मासिक वेतन के अतिरिक्त उसकी ऊपरी आमदनी बहुत अच्छी थी नौकर-चाकर, सवारी की कार, ईंधन इत्यादि की सुविधायें सभी कुछ तो उपलब्ध था। भाग्यवश उसकी पत्नी उर्मिला भी एक धनी परिवार की इकलौती पुत्री थी। प्रकृति से रमेश उदारचित्त, सुशील, तथा मिलनसार था। पत्नी अपने को शिक्षित होने का दावा रखती थी, किन्तु आचार-विचार, रहन-सहन तथा स्वभाव से एक निम्न कोटि के मानव से भी गई गुजरी थी। बड़ी स्वार्थी अभिमानी, कृतघ्न और तथा तुच्छ विचार की थी। पास पड़ोस का तो कहना ही क्या, उनके सास, ननदें, देवर, इत्यादि सभी निकट सम्बन्धी भी फूटी आंख न भाते थे। इतना ही नहीं वह अपने सीधे-साधे पति रमेश की भी अधिक परवाह न करती थी। वे कार्यालय से आते पर कभी ठीक समय पर भोजन मिलता। प्रायः तो उर्मिला जी उनसे पहले ही भोजन कर लेती थी। यदि कोई भूला भटका, रमेश के साथ अतिथि आ निकलता तो बेचारे को प्रायः अपने हिस्से का भोजन उसको खिलाकर स्वयं भूखा ही रहना पड़ता था, क्योंकि श्रीमती जी को इतना समय कहां कि दुबारा चूल्हा फूंककर आंखें फोड़े। कभी रमेश को ज्वर हो जाता तो भी बहू जी घर के बाहर सहेलियों की गोष्ठी में गप-शप ही लगाती रहती। इस पर रमेश को अधिक दुख या बेचैनी होती थी। वह किसी सेवक को भेज उर्मिला को बुलवा भेजता तो उसको भी फटकार कर भगा देती। रमेश अपने शील स्वभाव के कारण सबको पचते थे। अतएव वे माता, बहनों तथा सम्बन्धियों को अति प्रिय थे। वे वहां आकर रहतीं तो उर्मिला को न सुहाती। रमेश के कार्य पर जाने पर, उनसे तनिक तनिक सी तुच्छ बातों पर तथा वस्तुओं पर झगड़ा करती मानों उनका तो यह कुछ था ही नहीं। सन्ध्याकाल रमेश लौटता तो इधर बहन फरयाद लेकर रोती

माता अपनी सुनाती उधर श्रीमती जी क्रुद्ध हो कोप भवन में आसनारूढ़ मिलती थीं। बड़ी मुसीबत में था बिचारा!

दिन भर का थका मांदा रमेश अपने परिवार में सुख स्वप्न देखता आनन्द की टोह में आता किन्तु वातावरण इसके बिलकुल विपरीत पाता। इनकी यही दिनचर्या हो गई थी और यही था इनका दाम्पत्य जीवन! घर क्या था मल्लयुद्ध का सा अखाड़ा बना रहता। वहां कौन जानता था कि यौवन का मद, प्रेम की उमंग तथा जीवन के अरमान तथा सुख और शान्ति किन चिड़ियों का नाम है।

उसी पड़ोस में कपूर नाम के एक अधेड़ अवस्था के व्यवसायी भी रहते थे। पुराने विचारों के माता पिता ने बिना छानबीन और देखभाल किये बाल्यकाल में ही एक साधारण ग्रामीण कन्या शान्ति से उनका विवाह कर दिया था।

पति पत्नी की जोड़ी में 'जमीन आसमान' का अन्तर था, कोई मेल ही न था। पति गौर वर्ण विशाल-वक्ष-युक्त स्वस्थ शरीर के अति शांत प्रिय पुरुष थे। श्रीमती जी पतली, दुबली हड्डियों का ढांचामात्र श्यामवर्णा, मुख पर माता शीतला की गहरी छाप, इत्यादि के कारण अत्यन्त कुरूप ही कही जा सकती थी और फिर स्वास्थ्य भी कभी ठीक न रहता था। रात दिन किसी न किसी रोग का शिकार रहती। बेचारी गृह कार्य भी नहीं कर पाती थी। कपूर को घर में रोटी पानी का भी ध्यान रखना पड़ता है। परिवार बड़ा था। वह यही सोचकर कि इसमें शांति का क्या दोष है इसको आंखों पर रखते। अपना तथा पत्नी का मन बहलाने का उद्योग करते। शांति को अधिक कष्ट होता और घर में कोई सहायक न होता तो स्वयं भोजन तक बना लेते। शान्ति ने भी विशुद्ध स्त्री हृदय पाया था यही सोच कर कि मैं तो सर्वथा इनके अयोग्य हूं। फिर भी मेरा कितना मान तथा प्यार है। कपूर पर प्राण न्योछावर करने को प्रस्तुत रहती थी तथा उनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करती। उनके गृह संबंधियों से प्रेम व्यवहार करती। इस त्याग तथा स्नेह की भावना ने ही दोनों का दाम्पत्य-जीवन बहुत सुखी व मधुर बनाया था। कपूर भी दुकान से

रहे परन्तु मैं नहीं [illegible] मुस्करा-
कर इसका स्वागत करें । इस प्रकार [illegible] नया का
[illegible] में [illegible]
[illegible] का अनुभव करें । [illegible] दाम्पत्य
जीवन ।

दाम्पत्य जीवन के [illegible] के [illegible] विभागों में
विभाजित करना चाहिये । एक में [illegible] है । दूसरे में
शान्ति व आनन्द का भाग । पहले [illegible] शान्ति
और सन्तोष स्थापित करने में असमर्थ है और दूसरे का [illegible] होते
हुये भी घर में गृहस्थ शान्ति का [illegible] वातावरण था । यह सब
पति और पत्नी के इन दोनों पर निर्भर करता है । [illegible]
[illegible] के स्वभाव, शील, व्यवहार तथा चतुरता (tact) पर निर्भर
करता है ।

दाम्पत्य जीवन के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करने के लिये
साधारण परिवारों की स्थिति का अध्ययन करना चाहिये । इनके आंकड़े
(statistics) एकत्रित किये जायें तो बड़ी विचित्र बातें दृष्टिगो-
चर होंगी । कुछ जीवन में बिलकुल सुख मिलता है कुछ में कम दुख ।
कोई किसी विशेष कारण से अधिक सुख अनुभव करता है और कोई दुख ।
किसी के जीवन में सुख दुख का मिश्रण मिलेगा । अब क्या परिणाम
निकले यह तो व्यक्तिगत परिस्थितियों पर ही निर्भर करता है । किन्तु
साधारण नियमों का पालन करने से कैसी भी विषम समस्या हो कुछ न कुछ
तो नियन्त्रण में आ ही सकती है । एवं कौन कौन से कारण हैं जो
दाम्पत्य जीवन असफल बना देते हैं । उनका कैसे उन्मूलन हो ताकि
जीवन सुखी हो सके । विवाह के पूर्व नवयुवतियों को अपने हित अनहित
की बातों को जान लेना चाहिये जिससे बात न बिगड़े और बाद में सब
[illegible] पछताये क्या होत है जब चिड़िया चुग गई खेत' का कुछ अनुभव
[illegible] आदर्श दाम्पत्य जीवन कैसा हो और कैसे उसे प्राप्त करें ?

'विवाह' द्वारा गृहस्थ द्वारा बनता है तथा समाज के दो मुख्य अङ्ग स्त्री पुरुष पति पत्नी के रूप में नवीन जीवन (दाम्पत्य) में पदार्पण करते हैं। प्रसिद्ध है 'जा की रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी' जिस वस्तु को जिस दृष्टिकोण से देखो उसमें उसीके अनुरूप प्रतिबिम्ब मिलेगा। अच्छों को अच्छाई और बुरों को बुराई। यही सिद्धान्त विवाह पर भी लागू होता है। इसको बंधन न मानकर प्रेम सूत्र ही की दृष्टि से देखना हितकर है। वास्तविकता भी यही है, कोरी भावना ही नहीं। इन विचारों से पति-पत्नी का विवाह रूपी सम्मेलन सुखदायी होगा। दोनों को परस्पर सहमत होकर ही चलना चाहिये। गृहस्थ-रूपी गाड़ी के दो पहिये पति और पत्नी जितने भी समान होंगे उतनी ही सुगमता से गाड़ी को बढ़ायेंगे।

सतर्कता से न चलने पर गृहस्थी को 'अखाड़ा' भी बनाया जा सकता है। अपने दोष अपने में न देखकर पति पत्नी में या पत्नी पति में तथा परिवार के अन्य सदस्यों में देखें तो कलह का बीज जमने लगता है। उद्योगी प्रकृति का अभाव, दारिद्र देवता को डेरा डालने का अवसर प्रदान करता है क्योंकि पति के आलसी होने से गृह-व्यय के लिये धन की पूर्ति नहीं होती। और पत्नी के उद्योगी न होने से कमाई का सदुपयोग नहीं होता ऐसी स्थिति में अनबन रहना भी अनिवार्य ही हो जाता है।

बहुत से कारण दम्पती में स्वाभाविक अरुचि या खिंचाव उत्पन्न कर देते हैं। एक दूसरे को प्रसन्न रखने के लिये तथा प्रेम का संचार करने के लिये, एक दूसरे का विचार रख पूर्ण सुविधा देनी चाहिये। वस्त्र, भोजन, रहन-सहन इत्यादि का इसमें विशेष महत्व है। जो पत्नियां इसकी तनिक भी परवाह नहीं करतीं वह दाम्पत्य-जीवन को नीरस बना डालती हैं तथा उसमें कोई आकर्षण नहीं रहता। अधिक समय तक एक साथ रहने से भी खिंचाव हो जाता है इसलिये वियोग का भी महत्व है।

कुछ पति, पत्नी के विषय में यह विचार रखते हैं कि यह कोई भेद गुप्त नहीं रख सकती और पत्नी को पति के ऊपर यह भ्रम कि यह मुझसे कुछ छिपाते हैं, हो जाना स्वाभाविक है। इससे वह दुखी रहती है तथा प्रायः चिड़चिड़ाने लगती है और पति से छलकपट करने लगती है। इसी

गृह संचालन में तथा अन्य घरेलू समस्याओं में, यदि दोनों एक मत नहीं होते तो भी बखेड़ा रहता है। पति के मतानुसार अमुक कार्य न होना चाहिये। और पत्नी उसको करना आवश्यक समझती है। ऐसे में यदि पति-पत्नी को आधीन समझकर क्रुद्ध होता है तथा रोकता है तो भी परस्पर मनमुटाव हो जाता है।

पति पत्नी में से कोई भी एक नयी रोशनी के चक्र में पड़ जाता है तो दूसरे की शान्ति नष्ट होने की आशंका रहती है। परिवतन शील युग में मनुष्य के रङ्ग ढङ्गों में अन्तर हो जाना स्वाभाविक है किन्तु कोई भी कार्य एक उचित अनुकूल दायरे के बाहर न होना चाहिये। क्योंकि इसमें कभी कभी बड़े विकट भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं तथा ना समझी में परस्पर शंकायें रहने लगती हैं। एक नई रोशनी की पत्नी को उसका रूढ़वादी पति एकांत में पुरुष मित्रों से वार्तालाप करते हुये देखता है, उनके साथ मनोरंजन के लिये क्लब, नाटक, चित्रपट, सरकस, गृह इत्यादि में जाना पत्नी कोई ऐब नहीं समझती पर इससे, विपरीत दृष्टिकोण के पति देव का मन शंकायुक्त हो जाना स्वाभाविक सा है। इस प्रकार का सामंजस्य न होने पर भी मनमुटाव तथा मानसिक वेदना रह सकती है और प्रेम छूमंतर हो जाता है।

सुखी दाम्पत्य के लिये वासना की तृप्ति (Sexsatiety) का होना दोनों के लिये बहुत आवश्यक है। इसकी नियम तथा संयम के अन्तर्गत संतुष्टता के लिये दोनों में से किसी एक में त्रुटि होने पर जीवन पर्यन्त निभाना प्रायः कठिन हो जा सकता है। कम से कम जीवन में असंतोष और दुख घर तो कर ही लेते हैं।

दाम्पत्य-जीवन को सफल बनाने के लिये परस्पर प्रेम की ममता जागृति करनी होती है। विवाह होने पर अधिकतर तो केवल वासना की प्रचंड अग्नि ही शरीर में जलती है किन्तु धीरे २ जैसे माता का प्रेम संतान के लिये आयु के साथ २ बढ़ता रहता है। वैसे ही पति-पत्नी के सम्बन्ध में वृद्धि होती रहती है तथा वासना तृप्ति साथ २ प्रेम का प्रकाश भी होता जाता है। यदि किसी विशेष कारण से इस प्रेम [illegible] तब जीवन काटना दुर्लभ हो जाता है।

दम्पती में परित्याग की भावना अंकुरित होने पर निभाने की शक्ति कुण्ठित हो जाती है। इससे नैतिक बल भी क्षीण हो जाता है और पति पत्नी की अनिष्ट २ भी बातें असह्य होने लगती हैं। बहुत से देशों में विवाह-विच्छेद (Divorce) का नियम है, किन्तु हमारे देश में वातावरण इसके विरुद्ध ही है। कुछ भी हो निभाने की शक्ति कम होने पर असहन शीलता बढ़ जाती है और परस्पर सम्पर्क का आनन्द जाता रहता है। विवाह के उपरान्त यदि पति का पर-स्त्री से या पत्नी का पर-पुरुष से अनुचित सम्बन्ध रहे या किसी भी एक प्रकार का व्यभिचार युक्त व्यवहार हो तो मनमुटाव बहुत ही गहरा हो जाता है और एक दूसरे से घृणा तक हो जाना स्वभाविक है।

पत्नी यदि आरम्भ से ही रौब जमाकर गृह स्वामिनी बनने का प्रयास करने लगती है तो यह प्रायः निष्फल ही नहीं होता बल्कि संकट उत्पन्न कर देता है। ससुराल और मायके में रहन सहन में घोर अन्तर हो जाता है। ससुराल में परायों को वश में करना पड़ता है। जो नारियां वश में करने का अर्थ आज्ञा पालन कराना समझती हैं और सेवा भाव का परित्याग कर देती हैं उनके लिए यही रीति बड़ी अहितकर प्रमाणित होती है।

भारतीय समाज का कमाऊ पति अपनी आश्रित समझी जाने वाली स्त्री की हुकूमत सहन करने को सरलता से तैयार नहीं हो पाता। हो सकता है कि असाधारण प्रतिभाशाली या सुन्दर स्त्री उसमें कुछ काल तक सफल हो सके किन्तु वास्तविकता इसके प्रतिकूल ही है। सेवा तथा त्याग के आधार पर ही नारी को अपने पति से अनुकूल कार्य कराने की आशा रखना हितकर है तथा प्रेम युक्त प्रयत्न आज्ञा पालन कराने की भावना और पति को गुलाम बनाने की महत्वकांक्षा की अपेक्षा इसमें अधिक सफलता दिला सकते हैं। रौब जमाने की चेष्टा दाम्पत्य जीवन को एक तमाशा बनाने का ही कारण होता है।

पति-पत्नी को परस्पर रुख देखकर चलना चाहिए। पत्नी यदि किसी शिर वेदना के कारण, एवम् कष्ट के कारण या बालकों से ऊबकर

उनके संग करने पर। जिद्दपिदाली है तो पति को अपना उत्तरदायित्व समझ तथा उसका मन जानकर उसकी सहायता करनी चाहिये । इ प्रकार यदि पति किसी आवश्यक कार्य में व्यस्त है और वे कोई विघ्न पैदा न करेंगे तो इसका [illegible] यह ध्यान रखना चाहिए कि यह अधिक शोरगुल न हो, कोई [illegible] उनके पास आकर विघ्न न करे इत्या ऐसे ही अन्य अवसरों पर यदि दम्पती एक दूसरे का रुख देखकर चल लगे तो सुख शान्ति का राज्य होता है ।

पति पत्नी का स्वभाव न मिलने पर भी प्रायः अनबन रहने लग है । एक शान्त और सरल प्रकृति का हुआ और दूसरा उग्र तो दाल है गले । एक विनोदी और दूसरा क्रोधी पति हँसी करता है तो देवी जी व मुंह फूल जाता है मानों 'मुहर्रम की पैदाइश हो ऐसी नाजुक स्थिति सामांजस्य बनाने की घोर आवश्यकता है वरना सारा खेल बिगड़ जाता है

जीवन को सुखी बनाने के लिये क्षमा रूपी 'अस्त्र को अवश्य धार करना चाहिए । निभाने का अर्थ ही क्षमा है । क्षमा बिना यह शक्ति निर्बल हो जाती है और प्रेम का टिकाव भी कठिन हो जाता है !। इतन ही नहीं पति पत्नी का सम्बन्ध एक खिलौने की भांति बन जाता है जो किसी समय जरा भी ठेस लगने पर चकनाचूर हो सकता है ।

दम्पती का बुद्धि योग्यता तथा संस्कृति में समान होना बहुत अच्छा है । फूहड़ स्त्री या मूर्ख पुरुष द्वारा घर में हर्ष की लहरें नहीं उठ सकतीं अधिक सन्तान या सन्तान हीनता भी परस्पर सम्बन्ध खराब कर देती है जिसका आधार परेशानी या धनाभाव होता है । अपना दोष स्वयं किसी को नहीं दिखाई देता यह साधारण बात है । किसी कष्ट का कारण पति पत्नी को व पत्नी पति को ठहराते हैं और दोनों ही प्रसन्न नहीं रह पाते पति हो या पत्नी, किसी को केवल अपनी राय को ही महत्व न देना चाहिये बल्कि परस्पर सहानुभूति से यह विचार करना चाहिये कि किस का मत अधिक लाभकारी है । 'जो मैं सो कोई नहीं' में तो कभी कोई काम नहीं बनता ।

जीवन में नित्य की छोटी २ बातों की ओर ध्यान देना सबसे अधिक आवश्यक है । इन्हीं बातों का सामूहिक परिणाम पति-पत्नी की स्थायी

तक सम्भव हो सेवा करनी चाहिये। रोगी अवस्था के अतिरिक्त वैसे भी एक दूसरे की सुविधा का ख्याल रखकर कार्य में कभी श्रेणियाँ न बननी चाहिये जो कार्य जिस पर पड़े और जिसके लिये उचित हो निसंकोच करना चाहिये दाम्पत्य जीवन में ऊंच नीच का ध्यान न करना चाहिए और पत्नी को प्रत्येक कार्य पति की सहमति लेकर तथा पति को भी पत्नी का मत लेकर करना चाहिये। जीवन में एक दूसरे का महत्व समझकर वास्तविक जीवन साथी समझना चाहिये। न कि भार स्वरूप! पत्नी विवाह उपरान्त सब प्रकार से पति पर अवलम्बित हो जाती है वह उसके लिये कितना त्याग करती है। माता पिता बन्धु सब का वियोग सहन कर परायों को अपनाती है इसलिये पति को उसकी सब प्रकार की आवश्यकताओं पर ध्यान देना चाहिये। वासना और प्रेम का सम्पर्क पुरातन है। प्रायः पत्नी लज्जायुक्त होने के कारण हाव भाव से ही उनके अभीष्ट को प्रकट कर पाती है और तृप्ति की आकाँक्षा रखती है किन्तु इस ओर ध्यान कम दिया जाता है। पति को पत्नी की शारीरिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति करना चाहिये। अपने मनोरंजन के साथ पत्नी के मन बहलाव मनोरंजन इत्यादि का भी विचार रखना चाहिये। प्रायः पुरुष कार्य से आकर भोजन से निवृत्त होकर मित्र गोष्ठी में या अन्य स्थानों पर आमोद प्रमोद करते हैं। दिन भर से प्रतीक्षा करने वाली मूक पत्नी की इतनी उपेक्षा की जाती है जो असहनीय हो जाती है। पत्नी इस प्रकार के व्यवहार से अपने को संतान उत्पत्ति का यंत्र मात्र और कोरी गृह सेविका ही अनुभव करने लगती है मानव प्रकृति भावनाओं हृदय तथा वृत्तियों के विचार से स्त्री पुरुष में कोई अन्तर करना अन्याय ही नहीं सामाजिक अपराध है।

मनुष्य के लिये स्वर्ग या नरक दोनों इसी संसार में है जिनको प्राप्त करना दम्पती के कर्म और उद्योग पर बहुत कुछ निर्भर है। यदि दम्पती जीवन में सुख शान्ति और आनन्द पाया तो यही उनके लिये स्वर्ग न है और कलह अशान्ति तथा असंतोष रहने पर यही नरक बन है।

जाकर छोटा सा घर किराये पर लिया तथा ऋण लेकर गृह की व
सामग्री जुटाई। उनकी नई धर्म पत्नी बहुत योग्य थी। वे उ
देती रही कि मैं इस आय में ही सब कुछ कर लगी वह बहुत दू
थी। उन्होंने इस आय में से भी कुछ रु० प्रति मास बचा कर
गुजर करना आरम्भ किया। "उन्होंने जितनी चादर है
पसारिये" कहावत का अनुकरण किया। तानों, लांछनों, तथा
बदनामी का भी उन्होंने कुछ ख्याल न किया। अपनी नंदों, पु
अन्य सम्बन्धियों को भी वे केवल मीठी वाणी से ही प्रसन्न कर प
सब उनकी कुछ न मिलने पर या कम देने पर बुराई भी करते
उसने कुछ भी परवाह न की। उनके उसी सिद्धांत ने आगे उनके
को सब प्रकार से सुखी व सम्पन्न बना दिया। आय बढ़ जाने
उन्होंने अपना व्यय व्यर्थ में नहीं बढ़ाया। उनकी धर्मपत्नी ने
व्यय बढ़ाने की अपेक्षा कन्याओं के विवाह तथा शिक्षा के
संचित करना अधिक उपयुक्त समझा। यह उस नारी के गृह
निपुण होने का ही फल था कि सब सौतेली तथा निजी, क
उचित रीति से शिक्षण हुआ जिससे वे उच्च घराने की शोभा ब
प्रसाद जी ने पुत्र को बेरिस्टरी पास कराई तथा रहने के लिये
गृह बनवा दिया और एक प्रतिष्ठित वकील बन गये। यह गृह
का एक सुन्दर चित्र है। उदाहरण इसके विपरीत भी अनेकों हैं

पति धनोपार्जन करता है किन्तु उसके उपयोग करने का उत्त
पत्नी पर ही है। सोने के महल को मिट्टी में मिलाना तथा
सम्पन्न बना देना नारी के ऊपर ही निर्भर है, धन व्यय मोटी
तीन प्रकार से होता है। फिजूल खर्ची, कृपणता किफायतशारी

फिजूल खर्ची, ऐसा क्षय रोग है कि जिस घराने में लग
उसका सर्वनाश कर डालता है। यह यह लत है जो एक बार
पर उससे पीछा छुड़ाना कठिन हो जाता है। किसी को कितनी
तो वह कभी भी इस प्रकार से व्यय करने के कारण उसे पर्या
क्योंकि जो व्यय किया जाता है चाहे वह व्यर्थ ही का

आवश्यक सा प्रतीत होने लगता है। इस प्रकार से एक एक करके व्यय बढ़ते ही जाते हैं और मनुष्य को इन सब के कारण ऋण तक लेने की आवश्यकता हो जाती है।

इसके विपरीत दूसरी बुराई है कंजूसी। प्रायः मनुष्य पैसा संचित करने के लिये प्रत्येक समय लालायित रहता है। धन व्यय न करने से चाहे बड़े से बड़ा अनिष्ट भी क्यों न हो जाय किन्तु वह उस व्यय को भी व्यर्थ समझता है। प्रायः देखा जाता है कि मनुष्य कंजूस होते हैं लालच के कारण हानि होने पर 'भाग्य में ऐसी ही मंजूर थी' कहकर संतोष लेते हैं। यह भी बहुत बुरी आदत है।

किफायतशारी एक उत्तम मार्ग है और फिजूलखर्ची तथा कंजूसी का मध्यस्थ है। जहां आवश्यकता प्रतीत होती है वहां पर सर्वत्र धन लुटाने में भी संकोच न हो किन्तु जो व्यय व्यर्थ लगे उसमें एक एक पैसे के लिये हाथ खींचना यही किफायतशारी है। किसी भी वस्तु का सदुपयोग कर अधिक से अधिक लाभ उठाना तथा धन मितव्ययता करना भी 'किफायतशारी' ही है। यह ही धन व्यय करने की एक आदर्श रीति है।

गृहस्थ–जीवन में बहुत से व्यय आवश्यक तथा तात्कालिक होते हैं और उनको उसी समय न करने से बड़े दुःखदायी परिणाम होते हैं। इस प्रकार के व्यय भी होते हैं जो जीवन चलाने के लिये आवश्यक नहीं होते किन्तु वैभव बढ़ाने के लिये सुविधानुसार किये जा सकते हैं। जीवन में दोनों ही प्रकार के व्यय अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार करने चाहिये। यदि अत्यन्त आवश्यक व्यय ही किया जाय और मान, मनोरंजन तथा सामाजिक बंधनों आदि में तनिक भी न किया जाय तो भी जीवन रसहीन सा प्रतीत होने लगता है। यदि आवश्यक तथा अनावश्यक व्यय, दोनों ही दिल खोलकर 'जेब का ख्याल न रख' किये जाय तो सर्वनाश हो जाता है क्योंकि ऐसी अवस्थाओं में आर्थिक स्थिति को नियंत्रण में लाना कठिन हो जाता है। गृहस्थ में जीवन को सुखदायी बनाने के लिये पति और पत्नी दोनों को धन व्यय [illegible] फिजूलखर्च तथा कृपण प्रकृति का न [illegible] आदत के हुये तो राम ही

जाकर छोटा सा घर किराये पर लिया तथा ऋण लेकर गृह की आवश्यक सामग्री जुटाई। उनकी नई धर्म पत्नी बहुत योग्य थी। वे उनको धैर्य देती रही कि मैं इस आय में ही सब कुछ कर लूगी वह बहुत दूर दर्शिता थी। उन्होंने इस आय में से भी कुछ रु० प्रति मास बचा कर जैसे भी गुजर करना आरम्भ किया। "उन्होंने जितनी चादर है उतने पैर पसारिये" कहावत का अनुकरण किया। तानों, लांछनो, तथा व्यर्थ की बदनामी का भी उन्होंने कुछ ख्याल न किया। अपनी ननदों, पुत्रियों तथा अन्य सम्बन्धियों को भी वे केवल मीठी वाणी से ही प्रसन्न कर पाती थी। सब उनकी कुछ न मिलने पर या कम देने पर बुराई भी करते थे किन्तु उसने कुछ भी परवाह न की। उनके उसी सिद्धांत ने आगे उनके परिवार को सब प्रकार से सुखी व सम्पन्न बना दिया। आय बढ़ जाने पर भी उन्होंने अपना व्यय व्यर्थ में नहीं बढ़ाया। उनकी धर्मपत्नी ने व्यर्थ का व्यय बढ़ाने की अपेक्षा कन्याओं के विवाह तथा शिक्षा के लिये धन संचित करना अधिक उपयुक्त समझा। यह उस नारी के गृह कार्य में निपुण होने का ही फल था कि सब सौतेली तथा निजी, कन्याओं का उचित रीति से शिक्षण हुआ जिससे वे उच्च घराने की शोभा बनी। राम प्रसाद जी ने पुत्र को बेरिस्टरी पास कराई तथा रहने के लिये शानदार गृह बनवा दिया और एक प्रतिष्ठित वकील बन गये। यह गृह-व्यवस्था का एक सुन्दर चित्र है। उदाहरण इसके विपरीत भी अनेकों हैं।

पति धनोपार्जन करता है किन्तु उसके उपयोग करने का उत्तरदायित्व पत्नी पर ही है। सोने के महल को मिट्टी में मिलाना तथा निर्धन को सम्पन्न बना देना नारी के ऊपर ही निर्भर है, धन व्यय मोटी तौर पर तीन प्रकार से होता है। फिजूल खर्ची, कृपणता किफायतशारी।

फिजूल खर्ची, ऐसा क्षय रोग है कि जिस घराने में लग जाता है उसका सर्वनाश कर डालता है। यह वह लत है जो एक बार लग जाने पर उससे पीछा छुड़ाना कठिन हो जाता है। किसी को कितनी भी आय हो वह कभी भी उस प्रकार से व्यय करने के कारण उसे पर्याप्त नहीं हो सकती क्योंकि जो व्यय किया जाता है चाहे वह व्यर्थ ही का क्यों न हो

आवश्यक सा प्रतीत होने लगता है। इस प्रकार से एक एक करके व्यय बढ़ते ही जाते हैं और मनुष्य को इस लत के कारण ऋण तक लेने को बाध्य हो जाना पड़ता है।

इसके बिल्कुल विपरीत है कंजूसी। कृपण मनुष्य पैसा संचित करने के लिये प्रत्येक क्षण लालायित रहता है। धन व्यय न करने से चाहे बड़े से बड़ा अहित भी क्यों न हो जाय किन्तु वह उस व्यय को भी व्यर्थ समझता है। प्राय देखा जाता है जो मनुष्य कंजूस होते हैं लालच के कारण हानि होने पर 'भगवान की ऐसी ही मर्जी थी' कहकर संतोष लेते हैं। यह भी बहुत बुरी आदत है।

किफायतशारी एक मध्यम मार्ग है और फिजूलखर्ची तथा कंजूसी का सामञ्जस्य है। जहां आवश्यकता प्रतीत होती है वहां पर सर्वत्र धन लुटाने में भी संकोच न हो किन्तु जो व्यय व्यर्थ लगे उसमें एक एक पैसे के लिये हाथ खैंचना यही किफायतशारी है। किसी भी वस्तु का सदुपयोग कर अधिक से अधिक लाभ उठाना तथा धन मितव्ययता करना भी 'किफायतशारी हो है। यह ही धन व्यय करने की एक आदर्श रीति है।

गृहस्थ-जीवन में बहुत से व्यय आवश्यक तथा तात्कालिक होते हैं और उनको उसी समय न करने से बड़े दुःखदायी परिणाम होते हैं। इस प्रकार के व्यय भी होते हैं जो जीवन चलाने के लिये आवश्यक नहीं होते किन्तु वैभव बढ़ाने के लिये सुविधानुसार किये जा सकते हैं। जीवन में दोनों ही प्रकार के व्यय अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार करने चाहिये। यदि अत्यन्त आवश्यक व्यय ही किया जाय और मान, मनोरञ्जन तथा सामाजिक बंधनों आदि में तनिक भी न किया जाय तो भी जीवन रसहीन सा प्रतीत होने लगता है। यदि आवश्यक तथा अनावश्यक व्यय, दोनों ही दिल खोलकर 'जेब का ख्याल न रख' किये जाय तो सर्वनाश हो जाता है क्योंकि ऐसी अवस्थाओं में आर्थिक स्थिति को नियंत्रण में लाना कठिन हो जाता है। गृहस्थ में जीवन को सुखदायी बनाने के लिये पति और पत्नी दोनों को धन व्यय करने के लिये फिजूलखर्च तथा कृपण प्रवृत्ति का न होना चाहिये। यदि दोनों ऐसी एक ही आदत के हुये तो राम ही

मालिक है। फिजूलखर्ची पर को नष्ट करती है। और कंजूसी से चाहे पैसा एकत्र होकर 'नगर सेठ' की उपाधि मिल जाय किन्तु जीवन साक्षात नरक हो जाता है। विभिन्न प्रकृति होने पर भी देखभाल कर तथा आगा पीछा सोचकर कार्य करने में ही हित है।

प्रायः देखा जाता है कि नारी घर मालकिन अर्थात् सब धन की स्वामिनी समझी जाती है किन्तु होती है केवल नाम की ही, उसे पति पर ही अवलम्बित होना पड़ता है। पत्नी इस योग्य नहीं होती कि स्वावलम्बी बन सके। भारत में पुरुष परम्परा से ही नारी के स्वावलम्बी न होने के कारण उसे पराधीन, पैर की जूती, गुलाम, ताड़न की अधिकारिणी आदि समझते हैं। पत्नी दिन रात में पति से कहीं अधिक परिश्रम कर उसको सुख पहुँचाती है किन्तु अधिकतर पति कमाई खाती है। तेरे लिये कहां से लाऊँ' इत्यादि कह कर उसे अपमानित करते हैं। उसको सब प्रकार से पुरुष पर अवलंबित रहना पड़ता है। यही कारण है कि प्रायः भारतीय हिन्दू नारी को जीवन पर्यन्त पति की आधीनता में रहते हुए अपने अरमानों पर कुठाराघात होते सहना पड़ता है। पुरुष मनमाना खर्च करते हैं। किन्तु नारी को पैसे २ के लिये उसका मुख ताकना पड़ता है। नारी आर्थिक अवलम्बन के कारण ही अबला कहलाती है। प्रायः देखा जाता है कि आधुनिक काल में पतिदेव धन कमाकर लाकर पत्नी जी को सौंप देते हैं। इस प्रकार से उनको ही धन की मालकिन बताया जाता है। किन्तु पति से निजी सम्बन्ध रखने वाला व्यय चाहे कितना भी क्यों न हो तुरन्त कर लिया जाता है। किन्तु पत्नी की छोटी से छोटी वस्तु भी व्यर्थ है या फिर देखी जायगी कह कर टाल दिया जाता है। यह है उस थोथे मालकिनपने की असलियत। "घरबार तेरा कोठी कुठले को हाथ न लगाना' वाली कहावत नारी के लिये चरितार्थ होती है। क्योंकि धन की मालकिन होते हुये भी वह उसको साधारण सा भी व्यय नहीं कर सकती।

नारी की आर्थिक स्थिति में अवश्य सुधार होना चाहिए। नारी को धन को सुचारुरूप से व्यय करना है। जिस प्रकार आवश्यक प्रतीत हो उसी प्रकार पति की तरह पत्नी को भी अपने निजी व्यय को लिये

विश्वास होना चाहिये । आज दिन भी, पुत्र की तरह कन्याओं को भी स्वावलम्बी बनाने के लिए शिक्षा दिलानी चाहिए । यह भावना भी स्त्रियाँ केवल नौकरी करती हैं त्याग । इसका यह मतलब नारी जाति का मान करें । इसे अपने स्वाधीन स्वभाव का गुलाम या आश्रित न समझें । बल्कि उसके प्रति सम्मानपूर्वक की भावना रखें । यों तो नारी को पुरुष के एक निर्बल के लिए ही उपयुक्त समझा जाता है किन्तु स्वावलम्बी होने से वह किसी संकट या पति की मृत्यु आर्थिक स्थिति में सहायता दे सकेगी क्योंकि वह भी जानि पैसा कमाने में निपुण होती है । नारी के स्वावलम्बी होने पर ही उसका पुरुष समाज में मान होगा ।

नारी को भी जो गृहस्थ में नींव की ईंटों के समान होती है उसे अपना कर्तव्य समझना चाहिये एवं घर के सब सदस्यों को चाहे वह पति हो या पुत्र चाहे सास व ससुर हो ननद हो या देवर उनकी की आवश्यकताओं को समान समझना चाहिए 'जितनी चादर हो उतने पैर पसारिये' वाली कहावत को मूलमन्त्र बना लेना चाहिये । यही नहीं बल्कि आय में से जितना बच सके अपने व सन्तान के भविष्य के लिए अवश्य रखना चाहिये ।

हमारे हिन्दू समाज में बहुत से व्यर्थ के सामाजिक बन्धन तथा कुरीतियां प्रचलित हैं । जिसके कारण धन का बहुत अपव्यय होता है । उनमें उचित से अधिक धन लगाने में ही अपना गौरव समझा जाता है । अन्य लोगों का अनुकरण करने के हेतु अपनी आर्थिक स्थिति को भुला दिया जाता है । इससे या तो गृहस्थ की आवश्यकताओं भी पूर्ण नहीं हो पाती या ऋण तक लेने की नौबत आ जाती है । मेरे कहने का यह तात्पर्य कदापि नहीं कि ऐसे सामाजिक व्यय बिल्कुल न किये बल्कि अन्य बहनों का अनुकरण नहीं करना चाहिये अपनी आय तथा स्थिति व उत्तरदायित्व को विचार रखना चाहिये इसी में हित है ।

भारतीय समाज में नारी को स्वावलम्बी बनाने का पूर्ण प्रयत्न हो तथा वह समाज में गृहस्थी व आर्थिक कर्तव्य को भली प्रकार समझ सके तभी समाज का कल्याण है ।

ता है। दो चार दाये में गुप्त हो जायगी । बची रकम किसी और काम आवेगी" वृद्धा समझा कर बोली ।

प्रसव की संकट पूर्ण घड़ी आ गई निश्चित स्थान पर सामने रामा को लिटा दिया। वृद्धा भी आ गई और पुत्र का शुभ जन्म हो गया।

"बधाई है मांजी पोता हुआ" दाई ने मुस्कराते हुए कहा। सास माता की प्रसन्नता का पारावार न रहा। गृह में मङ्गल गान तथा उत्सव का आयोजन होने लगा तथा सबके हृदय उल्लास से परिपूर्ण हो गये।

"बहू" उठकर मुख धोकर यह हरीरा पीलो सास ने बाहर से ही आवाज देकर कहा।

"माता जी मुझे ज्वर सा हो रहा है और यहां तबियत घबराती है। फिर इस बिस्तर से दुगन्ध भी आ रही है तथा खाट पर लेटने में कष्ट सा हो रहा है। रामा ने कहराते हुए कहा "अरी बचा होने पर ऐसा तो ऐसे ही लगा करता है। सिर्फ कमजोरी से बदन टूटता होगा। ६ दिन दिन की ही तो बात है फिर नये वस्त्र और सेजा मिल जायगा।" सास माता ने दिलासा देते हुए कहा।

सास ने जिद्द कर वह घी तथा मेवा मिश्रित गुड़ का प्रसिद्ध हरीरा पौष्टिक बूटी समझकर पिला दिया। आन्तरिक विकार के कारण रामा को ज्वर था जिसके कारण इस हरीरे ने आग में घी का कार्य किया और उसकी अवस्था शोचनीय हो गई। इसी सफलता में ७२ घण्टे और व्यतीत हुये और परिणामान्त रामा का प्राणान्त हो गया। उसकी मृत्यु से भी अज्ञान का पर्दा न हटा और उसकी सास तथा प्रौढ़ और वृद्धा स्त्रियें उसे किसी भूत-प्रेत का ओसरा ही समझकर संतोष कर बैठ रहीं।

आज हमारे हिन्दू समाज में अन्ध विश्वास, छुआछूत तथा अज्ञान की जीती जागती मिसालें एक नहीं सहस्रों मिलती हैं। प्रसव करना प्रत्येक नारी के लिए जीवन मरण का प्रश्न है। दकियानूसी रीतियों के कारण इसका संकट भारतवर्ष में महान है। प्रसव हो जाने पर नारी का पीछा नहीं छूटता वरन उसके बाद भी कम से कम एक माह तक सभी प्रकार से सतर्क रहने की बड़ी आवश्यकता रहती है। क्यों कि इस समय जो रोग

जीवन-मरण

"अम्मा भाभी के दिन तो करीब ही आ गये, प्रसव के लिए कौनसा स्थान निश्चित किया है" रामा की ननद ने कहा।

"बेटी बात यह है जैसे तैसे यह दिन आया है। कमरा तो केवल एक ही है। गुसलखाने के पीछे जो छोटी सी कोठरी है वही ठीक रहेगी क्योंकि जचा को तो किसी के मुंह की भाप भी न लगना चाहिए। उस कोठरी में हवा भी नहीं लगेगी क्योंकि कोई खिड़की इत्यादि तो है ही नहीं" वृद्ध माता ने उत्तर दिया।

माता के आदेशानुसार पुत्री ने भाभी के प्रसव के लिए वही छोटी सी काल कोठरी साफ करायी। बिलकुल सीलनदार गंदी तथा दुर्गन्ध पूर्ण। प्रसव के पश्चात् उस स्थान पर कम से कम सात दिन रहना पड़ता है। उस गृह में पहुँची सब वस्तुयें अशुद्ध समझी जाती हैं। और दाई या महितरानी को भेंट करनी पड़ती है।

इसलिए रामा की सास ने एक टूटी हुई खटिया तथा फटा पुराना कूड़ा घर के लिए रखा, गन्दा और मैला कुचेला चिकना तथा गन्दा तकिया व कई थेगरी लगी गूदड़ी ऊपर ओढ़ने के लिए भी निकाली। संयोग के लिए आवश्यकता पूर्ण करने के लिए एक पुरानी बोरी भी सम्हाल कर रखली गई थी। कुम्हार के यहां प्रसूतिका के भोजन के लिए कूंडा तथा पीने के लिये सकोरा भी मंगा लिया था। तात्पर्य यह कि पूर्ण आयोजन व सामान प्रस्तुत कर दिये गये थे।

"अम्मा" वैसे तो जापे की सब तैयारी हो ही गई केवल यह तो कहना शेष है कि प्रसव दाई द्वारा कराया जायगा या मेम द्वारा क्योंकि भाभी को इस बार हालत पूरे भी माह सन्तोषजनक न रही" अबोधबाला ने उत्सुकता से पूछा।

"मेम को बुलाकर क्या होगा। बेटी पैली सदम में से जायगी क्या तुम सब मेम से ही इतने बड़े हुए हो। [illegible]

रहा है। दो चार घंटे में प्रसव हो जायगी। अभी रकम लिखो और काम [illegible] कहा। [illegible] होगा।

मगर भी संकट पूर्ण दशा आ गई। निश्चित स्थान पर नाइन ने रामा को लिटा दिया। ज़रा सी देर में [illegible] और पुत्र का शुभ जन्म हो गया।

"बधाई है मांजी पोता हुआ" दाई ने मुस्कराते हुए कहा। सास मां की प्रसन्नता का पारावार न रहा। गृह में मङ्गल गान तथा उत्सव का आयोजन होने लगा तथा सबके हृदय उल्लास से परिपूर्ण हो गये।

"बहू" उठकर मुंह धोकर यह हरीरा पीलो। सास ने बाहर से ही आवाज देकर कहा।

"माता जी मुझे ज्वर सा हो रहा है और यहां तबियत घबड़ाती है। सिर दर्द विस्तर से दुगना भी आ रहा है तथा खाट पर लेटने में कष्ट सा हो रहा है। रामा ने कहराते हुए कहा "अरी बहू। होने पर ऐसा को ऐसे ही लगा करता है! निर्बल कमजोरी से बदन टूटता होगा। ६ दिन दिन को ही सो जाती है फिर तो आराम और सैंधा मिल जायगा।" सास माता ने दिलासा देते हुए कहा।

सास ने फिर भर पट घी तथा मेवा मिश्रित गुड़ का प्रसिद्ध हरीरा संजीवनी बूटी समझकर उसे पिला दिया। आन्तरिक विकार के कारण रामा को ज्वर था जिसके कारण इस हरीरे ने आग में घी का कार्य किया और उसकी अवस्था शोचनीय हो गई। इसी गफलत में ७२ घण्टे और व्यतीत हुये और परिणामान्त रामा का प्राणान्त हो गया। उसकी मृत्यु से भी अज्ञान का पर्दा न उठा और उसकी सास तथा प्रौढ़ और वृद्धा स्त्रियें उसे किसी भूत-प्रेत का ओसरा ही समझकर संतोष कर बैठ रहीं।

आज हमारे हिन्दू समाज में अन्ध विश्वास, छूतछात तथा अज्ञान की जीती जागती मिसालें एक नहीं सहस्रों मिलती हैं। प्रसव करना प्रत्येक नारी के लिए जीवन मरण का प्रश्न है। दकियानूसी रीतियों के कारण इसका संकट भारतवर्ष में महान है। प्रसव हो जाने पर नारी का पीछा नहीं छूटता वरन उसके बाद भी कम से कम एक माह तक सभी प्रकार से सतर्क रहने की बड़ी आवश्यकता रहती है। क्यों कि उस समय जो रोग

शरीर में प्रविष्ट कर जाते हैं वे जीवन पर्यन्त सताते हैं तथा कठिनाई से अच्छे हो पाते हैं। जरा सी लापरवाही मृत्यु के द्वार तक सहज ही में पहुंचा देती है।

छोटी अवस्था में ही जिन कन्याओं का विवाह हो जाता है उनके छोटी अवस्था में संतान हो जाना स्वाभाविक होता है। छोटी अवस्था में प्रसव होने से कन्याओं को बहुत शारीरिक कष्ट हो जाते हैं। वे उस अवस्था में परहेज, आराम, हवा न लगने देने इत्यादि का महत्व नहीं समझ पातीं इसलिये प्रसव के उपरान्त जरा जरा सी लापर-वाही हो जाने से जन्म भर को दुख भोगना पड़ता है। इसके अतिरिक्त ऐसी अवस्था में प्रसव होने से मानसिक व शारीरिक विकास अधूरा ही रह जाता है। गर्भ अवस्था की परेशानियों के अतिरिक्त बहुत सी की मौत ही हो जाती है। क्योंकि उनकी छोटी अवस्था इस पीड़ा को सहने योग्य नहीं होती।

प्रायः देखा जाता है कि बहुत सी नारियां शीघ्र गर्भ का शिकार हो जाती हैं। जल्दी २ गर्भ होने तथा प्रसव होने से भी शारीरिक शक्ति का का ह्रास होता है और शरीर रोग ग्रस्त हो जाता है। क्योंकि शरीर में इतनी शक्ति उत्पन्न हो ही नहीं पाती जितनी जल्दी प्रसव के लिए आवश्यक है। इसलिए यदि शीघ्र प्रसव होते रहते हैं तो कुछ के पश्चात ही नारी का शरीर कान्तिहीन तथा दुर्बल होता चला जाता है सुन्दरता नष्ट हो जाती है तथा यौवन काल में ही बुढ़ापा आ जाता है। शरीर की कमी की यदि पौष्टिक भोजन तथा संयम से पूर्ति नहीं होती तो ऐसी नारियां एक न एक दिन क्षय रोग का शिकार हो जाती है या कठिन रोगों से जीवन पर्यन्त फंसी रहती हैं।

इसके अतिरिक्त नारी के लिए और भी अधिक दुखदायी तथा जटिल एक और समस्या है जिसे गर्भ-पात कहते हैं। प्रकृति के अनुसार बच्चे को गर्भ में ९ माह रहना चाहिए किन्तु शरीर में विकार होने से अथवा किसी दुर्बलता के कारण कभी २ वह २ या ३ मास में ही नष्ट हो जाता है। इसमें बहुत [illegible]

क्षति भी अधिक होती है। कभी २ जब गर्भ केवल ७ या ८ मास ही होता है तब भी बच्चा हो जाता है। अधूरा प्रसव होने से बच्चा जीवित नहीं रह पाता और शरीर को भी अधिक क्षति होता है। मानसिक वेदना तो होती ही है।

उपचार

गर्भ रहते ही नारी को अपने स्वास्थ्य का साधारण से अधिक ख्याल रखना चाहिए। गर्भ-पात प्रायः भारी बोझ उठाने, गर्म वस्तुयें खाने अथवा गिर जाने इत्यादि से होता है इसलिए शरीर को ऐसी बातों से बचाये रखना चाहिये। इनके अतिरिक्त ऐसी अवस्था में शरीर में गर्मी रखने के लिए तथा शरीर को स्वास्थ्य वर्धक बनाने के लिए पीसना या अन्य व्यायाम करना चाहिए। यह नारियों के लिए उत्तम है। विवाह का परिणाम सन्तानोत्पत्ति भी है इसलिए कभी भी बाल-काल में सन्तान का विवाह सम्पन्न न करना चाहिये। एक कहावत है कि आग फूस का बैर है। विवाह उपरान्त 'बचाव' अधिकतर पति-पत्नी के लिए कठिन ही हो जाता है इसलिए बाल विवाह कभी भी न करना चाहिये।

अल्प कालीन प्रसव से बचने के लिए संयम की बड़ी आवश्यकता है। किन्तु पति-पत्नी का एक स्थान पर होने से संयम में बहुत सी कठिनाइयां हो जाती हैं। इसलिये गर्भ के निवारणार्थ कुछ अप्राकृतिक उपाय भी हैं जिनका उपयोग लाभ दायक हो सकता है। रबर के खोल (French Leather) का प्रयोग पुरुष द्वारा तथा टोपी (Check Pastry) का प्रयोग नारी द्वारा गर्भ निग्रह की कुछ प्रचलित युक्तियां हैं। इनकी अच्छाई या बुराई के लिये विभिन्न दृष्टिकोण हैं। इनके अतिरिक्त बहुतसी औषधियां भी प्रचलित हैं जिनका प्रयोग करने से भी गर्भ से रक्षा हो सकती है। इस विषय पर बहुत सी पुस्तकें तथा साहित्य निकला है। उसको सोच समझ कर अध्ययन करना तथा किसी योग्य चिकित्सक की सम्मति लेकर प्रयोग करना चाहिए।

प्रसव होते समय यदि संभव हो सके तो किसी स्त्री-अस्पताल या प्रसूति-गृह में चला जाना चाहिए किन्तु प्रदेश के लिए वहां भाषाओं हेतु

शरीर में प्रविष्ट कर जाते हैं वे जीवन पर्यन्त सताते हैं तथा कठिनाई से अच्छे हो पाते हैं। जरा सी लापरवाही मृत्यु के द्वार तक सहज ही पहुँचा देती है।

छोटी अवस्था में ही जिन कन्याओं का विवाह हो जाता है, उनको छोटी अवस्था में संतान हो जाना स्वाभाविक होता है। छोटी अवस्था में प्रसव होने से कन्याओं को बहुत शारीरिक कष्ट हो जाते हैं। वे उस अवस्था में परहेज, आराम, हवा न लगने देने इत्यादि का महत्व नहीं समझ पातीं इसलिये प्रसव के उपरान्त जरा जरा सी लापरवाही हो जाने से जन्म भर को दुख भोगना पड़ता है। इसके अतिरिक्त ऐसी अवस्था में प्रसव होने से मानसिक व शारीरिक विकास अधूरा ही रह जाता है। गर्भा अवस्था की परेशानियों के अतिरिक्त बहुत सी की मौत ही हो जाती है। क्योंकि उनकी छोटी अवस्था इस पीड़ा को सहने योग्य नहीं होती।

प्रायः देखा जाता है कि बहुत सी नारियां शीघ्र गर्भ का शिकार हो जाती हैं। जल्दी २ गर्भ होने तथा प्रसव होने से भी शारीरिक शक्ति का का ह्रास होता है और शरीर रोग ग्रस्त हो जाता है। क्योंकि शरीर में इतनी शक्ति उत्पन्न हो ही नहीं पाती जितनी जल्दी प्रसव के लिए आवश्यक है। इसलिए यदि शीघ्र प्रसव होते रहते हैं तो कुछ के पश्चात ही नारी का शरीर कान्तिहीन तथा दुर्बल होता चला जाता है सुन्दरता नष्ट हो जाती है तथा यौवन काल में ही बुढ़ापा आ जाता है। शरीर की कमी की यदि पौष्टिक भोजन तथा संयम से पूर्ति नहीं होती तो ऐसी नारियां एक न एक दिन क्षय रोग का शिकार हो जाती हैं या कठिन रोगों से जीवन पर्यन्त फंसी रहती हैं।

इसके अतिरिक्त नारी के लिए और भी अधिक दुखदायी तथा कठिन एक और समस्या है जिसे गर्भ-पात कहते हैं। प्रकृति के अनुसार बच्चे को गर्भ में ९ माह रहना चाहिए किन्तु शरीर में विकार होने से अथवा किसी दुर्बलता के कारण कभी २ वह २ या ३ मास में ही नष्ट हो जाता है।

[illegible] है। [illegible] आदि भाग ही [illegible] है। [illegible] प्रसव होने से बच्चा जीवित [illegible] होता है। मानसिक वेदना भी होती ही है।

उपचार

गर्भ रहते ही नारी को अपने स्वास्थ्य का साधारण से अधिक ध्यान रखना चाहिए। गर्भ-पात प्रायः भारी बोझ उठाने, गर्म वस्तुयें खाने अथवा गिर जाने इत्यादि से होता है इसलिए शरीर को ऐसी बातों से बचाये रखना चाहिये। इसके अतिरिक्त ऐसी अवस्था में शरीर में गर्मी रखने के लिए तथा शरीर को स्वास्थ्य पूर्ण बनाने के लिए पीसना या अन्य व्यायाम करना चाहिए। यह नारियों के लिए उत्तम है। विवाह का परिणाम सन्तानोत्पत्ति भी है इसलिए कभी भी बाल-काल में सन्तान का विवाह भरसक न करना चाहिये। एक कहावत है कि आग फूस का बैर है। विवाह उपरान्त 'स्वभाव' अधिकतर पति-पत्नी के लिए कठिन ही हो जाता है इसलिए बाल विवाह कभी भी न करना चाहिये।

अन्य कालीन प्रसव से बचने के लिए संयम की बड़ी आवश्यकता है। किन्तु पति-पत्नी का एक स्थान पर होने से संयम में बहुत सी कठिनाइयां हो जाती है। इसलिये गर्भ के निवारणार्थ कुछ अप्राकृतिक उपाय भी है जिनका उपयोग लाभ दायक हो सकता है। रबड़ के खोल (French Leather) का प्रयोग पुरुष द्वारा तथा टोपी (Check Pastry) का प्रयोग नारी द्वारा गर्भ निग्रह की कुछ प्रचलित युक्तियां हैं। इनकी अच्छाई या बुराई के लिये विभिन्न दृष्टिकोण हैं। इनके अतिरिक्त बहुतसी औषधियां भी प्रचलित हैं जिनका प्रयोग करने से भी गर्भ से रक्षा हो सकती है। इस विषय पर बहुत सी पुस्तकें तथा साहित्य मिलता है। उसको सोच समझ कर अध्ययन करना तथा किसी योग्य चिकित्सक की सम्मति लेकर प्रयोग करना चाहिए।

प्रसव होते समय यदि संभव हो सके तो किसी स्त्री-अस्पताल या प्रसूति-गृह में चला जाना चाहिए किन्तु प्रत्येक के लिए वहां जाना भी संभव

धाय

श्री रामजीलाल मेरठ के एक धनीमानी व्यक्ति थे। आपके विवाह को १५ वर्ष व्यतीत हो चुके थे पिता बनने की स्वभाविक अभिलाषा पूर्ण न हुई थी। वे बहुत चिन्ता में रहते थे कि यह धन तथा सम्पति किस को सौंपेंगे। रामजीलाल को तेतीसवां वर्ष लग गया था। मुसाहिबों और चालूसों की कमी तो थी नहीं, ऐसी हालत में दूसरे विवाह का प्रस्ताव और उसका समर्थन होना स्वाभाविक ही था। धन के जोर पर सरलता से दूसरा विवाह सम्पन्न हो गया। इसी भाग्य नई बहू का आना ऐसा शुभ हुआ कि पहली पत्नी से भी बच्चे होने लगे। पचास तक पहुंचते २ डेढ़ दर्जन सन्तान के पिता बन गए, जहां एक को तरसते थे। पैसे की पर्याप्त सुविधायें होने के कारण सेवक व सेविकाओं की भी कमी न थी किन्तु फिर भी परिवार का जीवन नर्क हो गया था। गृह में कलह ही कलह सुनाई देती। दोनों पत्नियां सन्तान की अधिकता के कारण सख्त परेशान रहती थीं। इसमें वे सारा दोष श्रीरामजीलाल का ही समझती थीं। इसलिए उनकी जिह्वा पर हर समय जब यहा अन्धे हो गये थे, इसके जिम्मेदार तो आप ही हैं। यही वाक्य बने रहते थे, एक को खांसी, दूसरे को दांत, तीसरे को दस्त, चौथे का हाथ टूट गया आदि आदि मुसीबतें हर दम सवार रहती।

ऐसी स्थिति में यह साधारण अवस्था में भी सन्तान का उत्तरदायित्व उठाना सरल नहीं है। पुरुष का उस दायित्व कितना है! पत्नी के होते हुए केवल सन्तान के लिए दूसरा विवाह कहां तक संगत है! नारी को बच्चों की देखरेख के लिए धाय के रूप में क्या स्थिति हो जाती है, आदि बातें विचारणीय है।

विवाह के बाद पति पत्नी के मिलन का इच्छित फल सन्तान होना ठीक है। पुरुष और स्त्री दोनों का इसके लिए समान उत्तरदायित्व होता है। किन्तु प्रायः देखा जाता है पुरुष सन्तान न होने का एक मात्र कारण

धाय

श्री रामजीलाल सेठ थे एक धनी-मानी व्यक्ति थे। आपके विवाह को १५ वर्ष व्यतीत हो चुके थे किन्तु उनकी स्वाभाविक अभिलाषा पूर्ण न हुई थी। वे सदैव चिन्ता में रहते थे कि यह धन तथा सम्पत्ति किस को देंगे। रामजीलाल जी को चिन्ता घुन लग गया था। मुसाहिबों और चापलूसों की कमी तो थी नहीं, ऐसी हालत में दूसरे विवाह का प्रस्ताव और उसका समर्थन होना स्वाभाविक ही था। धन के जोर पर सरलता से दूसरा विवाह सम्पन्न हो गया। कहीं भाग्य नई बहू का आना ऐसा शुभ हुआ कि पहली पत्नी के भी बच्चे होने लगे। पचास तक पहुंचते २ वे दर्जन सन्तान के पिता बन गए, जहां एक को तरसते थे। पैसे की पर्याप्त सुविधायें होने के कारण सेवक व सेविकाओं की भी कमी न थी किन्तु फिर भी परिवार का जीवन नर्क हो गया था। गृह में कलह ही कलह सुनाई देती। दोनों पत्नियां सन्तान की अधिकता के कारण सख्त परेशान रहती थी। इसमें वे सारा दोष श्रीरामजीलाल का ही समझती थी। इसलिए उनकी जिह्वा पर हर समय जब क्या अन्धे हो गये थे, इसके जिम्मेदार तो आप ही हैं। यही वाक्य बने रहते थे, एक को खांसी, दूसरे को दांत, तीसरे को दस्त, चौथे का हाथ टूट गया आदि आदि मुसीबतें हर दम सवार रहती।

ऐसी स्थिति में या साधारण अवस्था में भी सन्तान का उत्तरदायित्व बढ़ना सरल नहीं है। पुरुष का उत्तरदायित्व कितना है? पत्नी के होते हुए केवल सन्तान के लिए दूसरा विवाह कहां तक संगत है? नारी की बच्चों की देखरेख के लिए धाय के रूप में क्या स्थिति हो जाती है, आदि बातें विचारणीय हैं।

विवाह के बाद पति पत्नी के मिलन का इच्छित फल सन्तान होना ठीक है। पुरुष और स्त्री दोनों का इसके लिए समान उत्तरदायित्व होता है। किन्तु प्रायः देखा जाता है पुरुष सन्तान न होने का एक मात्र कारण

नारियों को ही समझ उन्हीं पर सन्तानहीनता का दोषारोपण करते हैं। एक पत्नी के होते हुये सन्तान न होने पर चढ़ी आयु में भी दूसरा विवाह करना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। दुर्भाग्य से इस प्रकार से दूसरा विवाह करके समाज का नियम बिगाड़ कर भी बहुत से पुरुष सन्तानहीन रह जाते हैं तथा पत्नियों का जीवन नष्ट कर देते हैं।

किसी देश का भविष्य उसकी सन्तानों पर तथा उनकी योग्यता पर ही निर्भर करता है। अभी तक हमारा देश परतन्त्रता की शृंखलाओं में जकड़ा था। देश की बागडोर विदेशियों के हाथ में थी और देश भक्तों का कार्य केवल अधिकतर स्वतन्त्रता प्राप्त करने का था। अतः अबतक आर्थिक सामाजिक, नैतिक आदि समस्याओं के हल की ओर कम ध्यान दिया गया। अब इन्हीं समस्याओं की ओर अधिकतर ध्यान देने की आवश्यता है। इसकी ओर अमर राष्ट्र पिता बापू भी अपने 'हरिजन' के अन्तिम संदेश में संकेत दे गये हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर उसका टिकाव स्थाई करने के लिये महान राजनैतिक संस्था कांग्रेस को बापू जी के उसी आदेश का पालन करना है ताकि देशवासियों का जीवन स्तर उठ सके। इसके लिए सन्तति की ओर ध्यान देना सब से पहले आवश्यक है। हमें अपनी सन्तान को योग्यता की ऊँची सीढ़ी तक पहुँचा देना है ताकि वे भारत के मुख को उज्जल रख सके क्योंकि आज के बालक ही कल के नवयुवक बनकर देश का भार सम्हालेंगे।

बच्चों की शिक्षा माता के गर्भ से ही आरम्भ हो जाती है। गर्भ से लेकर जन्म तथा बालक की ५ वर्ष की आयु तक माता पर अधिक उत्तरदायित्व होता है। बच्चों को जीवन भर के लिए आरोग्य, स्वस्थ्य तथा सुडौल बनाना बचपन में माता पिता की देख भाल पर अधिक निर्भर करता है। माता पर ही बालक का उत्तरदायित्व अधिक माना जाता है। माता गर्भ में नौ मास सन्तान को रखती है। नाना प्रकार के कष्ट सहती है। सन्तान प्रसव के समय तो माता को इतना कष्ट उठाना पड़ता है कि जन्म मरण का प्रश्न उत्पन्न हो जाता है। इसके अतिरिक्त जन्म के

तक है जबतक बच्चा नहीं तब तो माता के पास ही रहना, खाना, पीना लेना, सभी कुछ होता है। जन्म से एक डेढ़ वर्ष तक तो माता का दूध ही उसका भोजन होता, माता की गोद उसकी कोमल शैय्या होती तथा माता ही उसका जीवन होती है। दाम्पत्य जीवन में पति जीविकोपार्जन कर गृहस्थी का पोषण करता है और पत्नी उसकी सन्तान की सेवा करती है तथा गृहस्थी संभालती है इसलिए सन्तान का उत्तरदायित्व माता पर पिता से बहुत अधिक होता है। प्राचीन वेद शास्त्रों में भी माता का प्रेम पिता प्रेम से सौगुना होना बताया गया है।

प्राय: देखा जाता है कि आजकल पत्नियों की पति देवों से—संतान का उत्तरदायित्व न समझने की स्वाभाविक शिकायत रहती है। पतिदेव सन्तान का कारण एक मात्र पत्नी को ही मानकर बालक के पालन पोषण में जरा भी हाथ नहीं बटाते। यदि बच्चे भी अधिक हों और सेविका रखने की परिस्थिति न हो तो पत्नी का जीवन बिना पति की सहायता के नरक बन जाता है। यही नहीं पतिदेव मनोरंजन इत्यादि में भी बच्चों के कारण पत्नी को साथ ले जाने में हिचकिचाते हैं। पत्नी को केवल बच्चों के पोषण के लिए ही समझा जाता है। स्वयं तो सब प्रकार के आनन्द लेते रहते हैं और पत्नी के कहने पर 'बच्चे परेशान करेंगे' कहकर टाल देते हैं। इसके अतिरिक्त पत्नी को रोगी अवस्था में भी बच्चों का कार्य करने के लिए बाध्य किया जाता है। उसको ऐसी हालत में भी आराम नहीं मिल पाता पुरुषों को ऐसे समय बच्चों का भार अपने ऊपर लेना ही चाहिये। जिस प्रकार से पति की बीमारी के समय में पत्नी को अन्य और किसी का सहारा न होने पर बाजार से सामान लेने तथा डाक्टर के पास जाने के लिये बाध्य होना पड़ता है यद्यपि यह कार्य उसके अधिक अनुकूल नहीं। इसी प्रकार पत्नी की रोगी अवस्था में पति को, पत्नी को आराम पहुँचाने के लिए सभी कार्य करने चाहिये चाहे वे गृहस्थ व अन्य गृह कार्य सम्बन्धी हों चाहे बच्चों की देखभाल सम्बन्धी।

बच्चों के पालन पोषण का जिस प्रकार उनके स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार माता की शिक्षा का उनके भावी जीवन तथा चरित्र पर

पड़ता है। यह बताया जा चुका है कि शिक्षा माता के ही गर्भ से होती है। माता के आचार-विचारों, रहन सहन तथा व्यवहारों का उस समय भी शिक्षा का गर्भ के बच्चे पर प्रभाव पड़ता है। वीर अभिमन्यु को चक्र-व्यूह भेदन का ज्ञान माता के ही गर्भ में ही होना केवल कल्पना और अतिशयोक्ति की ही बात नहीं है।

जन्म के पश्चात बहुत सी बातें अवश्य ही ध्यान में रखनी चाहिये। नित्य ही बच्चे को स्नान कराते समय उनके प्रत्येक अङ्ग की सफाई का विशेषकर गुप्त-अङ्गों की सफाई का ध्यान रखना चाहिये। बच्चे को भोजन माता के भोजन से दुग्ध बन कर ही मिलता है। माता को अपने भोजन में स्वास्थ्य वर्धक वस्तुयें खानी चाहिये। बच्चे के मल मूत्र का ध्यान रखना चाहिये। दिन में एक समय मल त्याग अवश्य होना चाहिये। बच्चे के वस्त्रों, बिस्तर की सफाई, इत्यादि का ध्यान रखना चाहिये। ८ महीने तक बच्चे को दुग्ध के अतिरिक्त कुछ भी न देना चाहिये। बाद में हलका भोजन बहुत अल्प मात्रा में जैसे दूध का पतला दलिया, मूंग की दाल, साबूदाना, इत्यादि चटाना चाहिये। इसकी मात्रा धीरे धीरे बढ़ानी चाहिये। ग्रीष्म ऋतु में प्राय बच्चों को अन्न न खाने से गर्मी बढ़ जाती है और पानी बहुत पीने के कारण बच्चे का पेट फूल जाता है। कभी कभी तो ऐसे बच्चे मृत्यु का शिकार तक बन जाते हैं। यदि बच्चा खाने योग्य न हो और गर्मी आजाय तो साबूदाना, एक या दो चम्मच खिलाना चाहिये। अधिक गर्मी में बच्चे को जौ का पानी पका कर देना चाहिये। यह बच्चे के स्वास्थ्य को भी अति लाभदायक होता है तथा शरीर में गर्मी से कोई भी व्याधि उत्पन्न नहीं होने देता। इसके अतिरिक्त बच्चे के लिए विशेष सावधानी का समय उसके दांत निकलने की अवस्था होती है। दांत प्रायः ८ या ९ मास की अवस्था से २ वर्ष तक निकलते हैं। बच्चों को ऐसी अवस्था में किसी फल का रस या अन्य शक्ति वर्धक वस्तु देनी चाहिये। माता के ऊपर बच्चे का अधिक उत्तरदायित्व उसके पैरों चलने की व दांत निकलने की अवस्था तक होता है। बच्चे को बहुत सी मातायें हमेशा गोद में लिये रहती हैं। यह बच्चे के शारीरिक उत्थान में बहुत

हानिकारक होता है। बच्चे को कुछ [illegible] विषय पर लेख देना चाहिये। जिससे वह सोच कर लिखकर अपना [illegible] पालन कर सके। बच्चे को स्वतंत्र [illegible] छुट्टी देना चाहिये तभी बच्चे का स्वाभाविक विकास अच्छा होता है।

१ या २½ वर्ष की अवस्था तक बच्चे में बिल्कुल समझ नहीं होती है। दो वर्ष की अवस्था के बाद ५ वर्ष की अवस्था तक बच्चे के अन्दर सूझ-बूझ आने लगती है। बच्चे को कायर, अयोग्य और अथवा वीर, सत्य वक्ता असत्य बनाना इत्यादि यह सब इसी समय की शिक्षा दीक्षा पर निर्भर है। बच्चों की शिक्षा का सबसे उपयुक्त समय बचपन ही है। बच्चों को शिक्षा में न [illegible] ही चाहिये न ढील देनी चाहिये। बच्चों की मनोवृत्ति ठीक बानर के सदृश होती है वह प्रत्येक बात की नकल करने का प्रयत्न करता है इसलिये बच्चों को शिक्षा देकर ही 'यह कर, यह न कर' कह कर ही अलग न हो जाना चाहिये, किन्तु उसके सामने वैसे ही करना चाहिये तथा उनको भी वैसा करने का आदी बना देना चाहिये। बच्चों से प्रेम का व्यवहार तो अवश्य करना चाहिये किन्तु किसी अपराध पर उनको कभी डांट भी देनी चाहिये जिससे वह भविष्य में डांट याद करके वैसा न करे। बच्चा की जिद् कभी भी पूरी न करनी चाहिये। जैसा उपयुक्त हो वैसा ही करे। उसके रोने मचलने पर उसे या तो छोड़ देना चाहिये या समझाना चाहिये। बच्चों के सम्मुख माता पिता को ऐसे हाव-भाव न करने चाहिये जिससे बच्चों के सम्मुख उनका बड़प्पन उठ जाय तथा वे आदर करना न सीखें।

बच्चों से यदि माता पिता गाली देकर तथा असभ्यता से बोलते हैं तो बच्चे भी वैसा ही करते हैं। इस पर वे प्रसन्न होते हैं। बच्चों से अन्य सम्बन्धियों अनुचित शब्द कहलाकर आनंदित होते हैं। यह बच्चे को जीवन पर्यन्त के लिये अशिष्ट बनाता है। जो माता पिता ऐसा करें उनको अपनी संतान से जीवन भर आदर करवाने की आशा न रखनी चाहिये। प्रायः देखा जाता है कि बहुत से माता पिता बच्चे को लाड़ प्यार से बिगाड़ते हैं। भद्दी बातें सिखाते हैं, जिद् पूरी करते हैं, यदि ऐसा करने से

पड़ता है। यह बताया जा चुका है कि शिशु माता के ही गर्भ में होती है। माता के आचार-विचार, रहन सहन तथा व्यवहारों का उस समय की क्रिया का गर्भ के बच्चे पर प्रभाव पड़ता है। वीर अभिमन्यु को चक्र-व्यूह भेदन का ज्ञान माता से ही गर्भ में ही होना केवल कल्पना और अतिशयोक्ति की ही बात नहीं है।

जन्म के पश्चात बहुत सी बातें अवश्य ही ध्यान में रखनी चाहिये। नित्य ही बच्चे को स्नान कराते समय उनके प्रत्येक अङ्ग की सफाई का विशेषकर गुप्त-अङ्गों की सफाई का ध्यान रखना चाहिये। बच्चे को भोजन माता के भोजन से दुग्ध बन कर ही मिलता है। माता को अपने भोजन में स्वास्थ्य वर्धक वस्तुयें खानी चाहिये। बच्चे के मल मूत्र का ध्यान रखना चाहिये। दिन में एक समय मल त्याग अवश्य होना चाहिये। बच्चे के वस्त्रों, बिस्तर की सफाई, इत्यादि का ध्यान रखना चाहिये। ८ महीने तक बच्चे को दुग्ध के अतिरिक्त कुछ भी न देना चाहिये। बाद में हल्का भोजन बहुत अल्प मात्रा में जैसे दूध का पतला दलिया, मूंग की दाल, साबूदाना, इत्यादि चटाना चाहिये। इसकी मात्रा धीरे धीरे बढ़ानी चाहिये। ग्रीष्म ऋतु में प्राय बच्चों को अन्न न खाने से गर्मी बढ़ जाती है और पानी बहुत पीने के कारण बच्चे का पेट फूल जाता है। कभी कभी तो ऐसे बच्चे मृत्यु का शिकार तक बन जाते हैं। यदि बच्चा खाने योग्य हो और गर्मी आजाय तो साबूदाना, एक या दो चम्मच खिलाना [illegible] अधिक गर्मी में बच्चे को जौ का पानी पका कर देना चाहिये। [illegible] स्वास्थ्य को भी अति लाभदायक हो[illegible] तथा शरीर में [illegible] व्याधि उत्पन्न नहीं होने देता। [illegible], बच्चे [illegible] सावधानी का समय [illegible] की [illegible] दांत प्रायः ८ या ९ [illegible] से २ वर्ष [illegible] बच्चों को ऐसी अवस्था [illegible] या अन्य [illegible] देनी चाहिये। माता [illegible] की व दांत निकल[illegible] हमेशा गोद में [illegible]

जिधर झुकाई जाती है उधर ही झुक जाती है। यदि उनकी मनोवृत्ति गन्दे और बदचलन बालकों की ओर हो जाती है तो वह नाबालगी के कारण इन्हीं में आनन्द लेने लगते हैं। बाद में समझ आने पर वह उन बातों को छोड़ने का प्रयत्न करते हुए भी सफल नहीं हो पाते क्योंकि उनका मन ऐसी बातों का आदी बन जाता है। वे उत्तम शिक्षा ग्रहण करने में भी सफल नहीं हो पाते। इस लिये माता पिता को आंख खोलकर कार्य करना चाहिये कि कहीं वे भद्दी बात तो नहीं सीखते। यदि वे कोई असभ्य बातें करें या करें तो उन पर बहुत कड़ा नियन्त्रण कर देना चाहिये इसके साथ उनको प्रेमपूर्वक उसकी हानियां भी बतलानी चाहिये।

घर के अतिरिक्त बच्चों पर दूसरे साथ खेलने वाले बच्चों का भी प्रभाव पड़ता है। बच्चों को न तो बहुत निम्न श्रेणी के ही बच्चों में ही खेलने देना चाहिये। निम्न श्रेणी के बच्चों के साथ बच्चे गन्दी व नीच बातें गाली देना इत्यादि सीख जाते हैं उच्च श्रेणी के बच्चों के साथ खेलने से बच्चे बढ़िया वस्त्र फैशन इत्यादि की बातें सीख जाते हैं। बच्चों को अपनी श्रेणी के बच्चों में ही खेलने की सुविधा होनी चाहिए।

हमारे बच्चों को जो हमारे देश के राजनैतिक व सामाजिक, उत्थान की बागडोर हैं तथा देश को ऊंचा उठाने के लिये दृढ़ स्तम्भ हैं योग्य बलवान तथा वीर बनाना उनको प्रारम्भिक गुरु माता तथा सरंक्षक पिता पर ही निर्भर करता है। माता के उज्जवल उपदेश और बचपन की देख भाल से बालक कुछ से कुछ बन सकता है। अमर बापू ने अपने जीवन में कितनी ही बार और शायद पल पल स्मरण किया है—मुझे जो कुछ प्राप्त हुआ है वह मेरी जननि की देन है जो एक आदर्श अशिक्षित भारतीय नारी थी।

कोई रोकता है तो उससे द्वेष करने लगते हैं। यह कहकर कि दूसरे के बच्चे से जलते हैं। उसी को दोषी बताते हैं। ऐसी दशा में बच्चे बड़े होकर भी माता पिता का अपमान करते हैं परन्तु जब माता पिता अन्य बच्चों को अपने माता पिता का आदर करते पाते हैं तो अपनी संतान को फिर दोषी ठहराते और बुरा बताते हैं। इसमें बच्चों का क्या दोष है। आदत खराब करने में माता पिता का ही दोष है। बच्चों को कभी भी गलती करने पर बच्चा है, यह कर न छोड़ देना चाहिये।

कुछ बच्चों की प्रायः खाने की, हर समय खाना मांगने की बुरी आदत पड़ जाती है। इससे माताओं को बहुत कठिनाई होती है वे कहीं जा नहीं सकतीं या वहां पर भी खाना मांगने के कारण उनको असुविधा और शर्म का अनुभव सा होता है। बच्चों को नियत समय पर भोजन देना चाहिये जिससे वह पेट भर भोजन करे और पाचन क्रिया भी ठीक रहे। बच्चे को कहीं ले जाते समय साफ कपड़े पहना कर, खिला पिलाकर यह वादा करायें कि वहां पर कोई भी खाने की या खेलने की वस्तु न मांगेगा और न लालायित दृष्टि से किसी खाने या खेलने की चीज को ही देखेगा। यदि वह ऐसा न करे तो आकर उसे कड़ा दण्ड देना चाहिये। फिर ऐसा न करने का वादा करायें तभी बच्चे इस बुरी आदत से छुटकारा पा सकते हैं।

तीन से पांच वर्ष की अवस्था ऐसी होती है कि बच्चे जैसा देखते हैं वैसा ही करते हैं माता पिता जो पति-पत्नी भी होते हैं, उनको ऐसी अवस्था में बालकों के सम्मुख बहुत ही सतर्क रहना चाहिये। परस्पर अश्लील विनोद या भाव न करने चाहियें। अशिष्ट व्यवहार न करना चाहिये। ऐसे बच्चों को हो सके पृथक शयनागार में सुलाना चाहिये या अपनी शैया पर तो कभी भी न सुलाना चाहिये क्योंकि एक तो पास सुलाने से बच्चों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है तथा असंगत बातें भी सीख सकते हैं बच्चों के लिये इस विषय पर गंभीरता पूर्वक ध्यान देना चाहिये क्योंकि यदि बच्चों को बचपन से ही ऐसी बातें ज्ञात हो जाती हैं तो उसका भावी जीवन अन्धकारमय होने की सम्भावना रहती है। बच्चों की मनोवृत्ति

स्थिर हो जाती है उधर ही झुक जाती है। यदि उनकी मनोवृत्ति असभ्य और अश्लील बातों की ओर हो जाती है तो वह नासमझी के कारण इन्हीं में आनन्द लेने लगते हैं। बाद में समझ आने पर वह उन बातों को छोड़ने का प्रयत्न करते हुए भी सफल नहीं हो पाते क्योंकि उनका मन ऐसी बातों का आदी बन जाता है। वे उत्तम शिक्षा ग्रहण करने में भी सफल नहीं हो पाते। इस लिये माता पिता को आंख खोलकर कार्य करना चाहिये कि कहीं वे बुरी बात तो नहीं सीखते। यदि वे कोई असभ्य बातें करें या करें तो उन पर बहुत कड़ा नियन्त्रण कर देना चाहिये इसके साथ उनको प्रेमपूर्वक उसकी हानियां भी बतलानी चाहिये।

घर के अतिरिक्त बच्चों पर दूसरे साथ खेलने वाले बच्चों का भी प्रभाव पड़ता है। बच्चों को न तो बहुत निम्न श्रेणी के ही बच्चों में ही खेलने देना चाहिये। निम्न श्रेणी के बच्चों के साथ बच्चे गन्दी व नीच बातें गाली देना इत्यादि सीख जाते हैं उच्च श्रेणी के बच्चों के साथ खेलने से बच्चे बढ़िया वस्त्र फैशन इत्यादि की बातें सीख जाते हैं। बच्चों को अपनी श्रेणी के बच्चों में ही खेलने की सुविधा होनी चाहिए।

हमारे बच्चों को जो हमारे देश के राजनैतिक व सामाजिक, उत्थान की बागडोर हैं तथा देश को ऊंचा उठाने के लिये दृढ़ स्तम्भ हैं योग्य बलवान तथा वीर बनाना उनकी प्रारम्भिक गुरू माता तथा संरक्षक पिता पर ही निर्भर करता है। माता के उज्जवल उपदेश और बचपन की देख भाल से बालक कुछ से कुछ बन सकता है। अमर बापू ने अपने जीवन में कितनी ही बार और शायद पल पल स्मरण किया है—मुझे जो कुछ प्राप्त हुआ है वह मेरी जननि की देन है जो एक आदर्श अशिक्षित भारतीय नारी थी।

कहीं की ईंट-कहीं का रोड़ा

मुंशी घनश्यामदास गुड़गांव के समीप के एक छोटे से ग्राम में रहते थे। दरिद्रता के कारण दोनों समय पेट भर भोजन भी उपलब्ध न था। इस पर कई कन्याओं तथा पुत्रों का भार था। धन के अभाव में तथा गांव के वातावरण में सन्तान को विशेषकर पुत्रियों को कुछ भी शिक्षा न दिला सके। कन्यायें सुशील तथा रूपवती थी। प्रथम कन्या राजश्री की आयु विवाह के योग्य हुई तो उन्होंने दर्जनों द्वार उस का सम्बन्ध करने के लिए खटखटाये किन्तु व्यर्थ। सब बातें तै होजाने पर अन्त में दहेज के सौदे पर गाड़ी रुक जाती थी। कोई भी भाग्यवान पुत्र-पिता मोटी रकम के हाथ लगे बिना सीधे मुंह बात ही न करता था। अन्त में मुंशी जी जब काफी खाक छान चुके तो मन मारकर भगवान के भरोसे घर बैठ रहे।

एक दिन ग्राम में एक राह चलते को रात्रि होजाने के कारण मुंशी जी के आंगन की शरण लेनी पड़ी। प्यासा कुंए को खोजता है। मुंशी जी ने भी कुछ कहकर अपना जी हल्का करना चाहा। अतिथि ने सारी बात ध्यानपूर्वक सुनी और बोला—मुंशीजी मेरी बात मानो तो रिश्ता मैं करादूं ? "भाई तुम मेरे भाग्य को कैसे पलट दोगे? मुंशी जी खिन्न स्वर में बोले - आगन्तुक ने सोचकर कहा 'ऐसा रिश्ता लीजिये कि महाशय, आपकी बेटी बैठी राज करेगी। धन, दौलत, जेवर, जमीन, जायदाद सभी कुछ है। चार चार तो घरके मकान हैं। विवाह भी तो उनकी हैसियत से होगा ? "यदि विवाह किसी हैसियत से करने को पैसा होता तो रोना किस बात का था। अबतक राजश्री को यों ही बैठाये रखता" मुंशी जी ने उदास होकर कहा—

"वाह साहब, हैसियत से विवाह करने की चिन्ता तो हैसियत वालों की रही। आपको आवश्यक धन मिले तो क्या एतराज हो

और समाज के दृष्टकोण की बात और है किन्तु अधर्म मानते हुए भी वास्तविकता-कटु सत्य-की अवहेलना नहीं की जा सकती। ऐसे ही सम्बन्ध सामाजिक पतन का कारण बनते हैं। इसमें दोष भी समाज के ठेकेदारों का ही है।

भारतीय समाज में एक नहीं अनेकों ऐसे अनमेल विवाह होते रहते हैं जो 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा' वाली कहावत को चरितार्थ करते हैं। विवाह आयु में घोर अन्तर के कारण ही अनमेल नहीं होता, रूपवान का कुरूप से, शिक्षित का अशिक्षित से, सभ्य का असभ्य से, सबल का दुर्बल से, तथा धनी का निर्धन से होना भी अनमेल ही है। आंख मींचकर सम्बन्ध किये जाते हैं, केवल अज्ञानता के कारण ही ऐसा नहीं होता बल्कि माता पिता जान बूझकर कुयें में धक्का दे देते हैं। कहीं कहीं तो धन का अभाव, विकट परिस्थिति तथा अनभिज्ञता के कारण ही ऐसा होजाता है। कहीं कहीं अधिक आयु होने पर कैसा भी लड़का मिलने पर बिना सोचे समझे, योग्य हो या अयोग्य, माता पिता, कन्या रूपी बला को टालने में ही अपना हित समझते हैं।

समाज में 'अन्धेर गर्दी' होने के कारण बिल्कुल आबनूसी पति भी चंद्रचकोरी पत्नी के ही स्वप्न देखते हैं। पैसे के बल पर बहुत से हब्शी, उर्वशीयों को प्राप्त करने में सफल भी होजाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि 'जो मैं सो कोई नहीं' समझकर रति-स्वरूपा पत्नियां भी सब पर रौब जमाने का प्रयत्न करती हैं। रूप के उपासक पतिदेव प्रभावित होकर जिव्हा नहीं खोलते। यदि कुछ उग्र प्रकृति के होने के कारण तथा अपने पुरुषत्व के भाव (Superiority Complex)की अकड़ में रहते हैं तो सुन्दरी उनकी उपेक्षा करने लगती हैं। इसके विपरीत अति कुरूपा नारियां भी कभी कभी सुन्दर पुरुषों के पल्ले पड़ जाती हैं। दोनों ही सम्बन्ध असंगत हैं और जरा सी भूल होजाने पर बड़े भयंकर दुष्परिणाम निकलते हैं।

कुछ उच्च शिक्षित, ग्रेजुयेट वर, माता पिता के परम आज्ञाकारी या लज्जायुक्त स्वभाव के होने के कारण स्वयं अपने विवाह सम्बन्ध

के विषय में मुख नहीं खोलते। एक अशिक्षित तथा गंवार कन्या के गले मढ़े जाने पर पत्नी को अपने प्रतिकूल पाकर, मन ही मन कुढ़ते हैं और उच्च भावनायें लिये स्वयं शिक्षित समाज में विचरते तथा अन्य स्त्री के संसर्ग व वार्तालाप में सुख खोजते फिरते हैं किंतु 'घर घर में उजाला' पाकर अपने घर में अंधेरा देखते हैं। पत्नी कितनी भी रूपवती क्यों न हो किंतु उसको पूर्णतया संतुष्ट करने में तथा स्थाई रूप से आकर्षित करने में असफल रहती है। और उसमें पति के कुपथगामी होने की भी सम्भावना होती है। उस अबोध बालिका को रूप लावण्य से परिपूरित होने पर भी जीवन पर्यन्त कम से कम मानसिक वेदना तो रहती ही है।

सम्बन्ध करते समय बहुत से माता पिता वर तथा कन्या के स्वास्थ्य की ओर भी ध्यान नहीं देते। यहां तक कि कन्याएं यक्ष्मा जैसे घातक रोगों से ग्रसित रहने पर भी जान बूझ कर विवाही जाती हैं ताकि समाज में उंगली न उठे कि 'अभी तक कुंआरी बैठाए रक्खी।' वे कन्या के हाथ न पीले कर सकने पर पाप के भागी नहीं बनना चाहते। रोगी कन्याओं द्वारा वर भी संक्रामक रोग पकड़ लेते हैं या पत्नी के आरोग्य न होने के कारण जीवन भर अपने दुर्भाग्य पर रोते हैं। यदि दम्पति में एक रोगी है और दूसरा निरोग्य तथा सबल तब भी परस्पर असन्तोष रहना कोई आश्चर्य की बात नहीं। जिनमें निभाने की शक्ति अधिक होती है वे निभाते भी हैं जहां सहनशीलता और संयम का अभाव रहता है वहां वेश्यागमन तथा व्यभिचार की भी सम्भावना रहती है।

विवाह करते समय वर कन्या के स्वभाव की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता। स्वभाव में सामंजस्य न होना तथा दोनों का दृष्टिकोण भी भिन्न होना अनमेल विवाह की ही बातें हैं। वैसे तो स्वभाव की परख समीप के सम्पर्क से ही हो सकती है किन्तु भाव-भंगी, बातचीत के ढंग, रहन सहन की रीति तथा स्थानीय पूछताछ से किसी की प्रकृति के बारे का बहुत कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

विधवा विवाह का तो समाज में विरोध होता है किन्तु विधुर विवाहके की ओर होते हैं । आधुनिक शिक्षित अथवा भावुक कन्याएं विधुरों को पति रूप में पाना बिल्कुल पसंद नहीं करतीं । क्या किसी कुँवारे लड़के को 'सेकिन्ड हैंड' विवाह अर्थात् किसी विधवा से विवाह करते, भारतवर्ष में साधारणतया सुना या देखा है । फिर बेचारी स्त्री जाति पर ही यह अन्याय क्यों ! विधुर जिसकी भी आयु का पता न हो किन्तु वास्तविक प्रेम का सम्बन्ध एक ही आत्मा से होता है वर किसी भी आयु का क्यों न हो किन्तु बहु पत्नी सम्पर्क के कारण विधुर का कुमारी को विवाहना सरासर अनमेल विवाह है और यह न्यायोचित नहीं है ।

अनमेल सम्बन्धों का समाज तथा राष्ट्र पर बहुत भयंकर परिणाम होता है । इनके कारण दाम्पत्य ही नहीं वरन् पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन भी दुर्भर हो जाते हैं । इनसे कलह, दुख तथा वेदना उत्पन्न होती है । संतति पर भी इनका अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता । प्रायः द्विजातीय विवाह की संतान को 'दोगली' इत्यादि कह कर नाम धरा जाता है किन्तु वास्तव में अनमेल विवाह से उत्पन्न संतान को ही दोगली कहना बहुत ठीक प्रतीत होता है । मूर्ख पिता तथा विदुषी माता, योग्य पिता तथा 'फूहड़' माता, रोगी पिता तथा निरोग्य माता, श्यामवर्ण भारतीय पिता तथा गोरांगी विदेशी माता, इत्यादि इनके उदाहरण हैं जिनकी सन्तान बहुत उच्च श्रेणी की नहीं उठ सकती और फिर समाज तथा राष्ट्र को पूर्णतया उन्नत कैसे कर सकती है ।

बे सिर पैर के रिश्तों से वरवधू दोनों के जीवन के सुख मिट्टी में मिल जाते हैं । अधिकतर, पुरुषों के चरित्र भ्रष्ट होने की सम्भावना रहती है । वे कुछ भांति के व्यभिचारों में संतुष्टि ढूंढ़ने का निष्फल प्रयास करते हैं तो कुछ 'गम' गलत करने के लिये वेश्याओं के द्वार खटखटाने लगते हैं और मैखाने की ओर दौड़ते हैं । इनसे कितनी हानियां हैं यह पाठक स्वयं विचार सकते हैं । व्यभिचार प्रायः लुकछिपकर करना पड़ता है और अपने पराये का ध्यान भुला देना पड़ता है । ऐसा कुकृत्य समाज के नियम

रोगों का शिकार हो सकती है। गुप्त कार्य सर्वदा वांछनीय होता है और खुलने पर अपमान तथा लानत या मरम्मत तक को नौबत ला देता है। वेश्यागमन से समाज का नियम तो नहीं बिगड़ता किन्तु धन, मान तथा स्वास्थ्य की महान क्षति होती है। विभिन्न घृणात्मक रोग तो वेश्या-गामियों के आवश्यक 'प्रसाद' हैं। पैसा न रहने पर कोठे से 'चार धक्के' मिलना दुखद परिणाम होता है। नैतिक दृष्टि से तो पुरुषत्व को भारी ठेस लगती ही है। सम्बन्धित वेश्या आज 'प्रकाश बाबू' की है तो कल 'मिर्जा सलीम' की। क्या कोई पुरुष अपने से सम्बन्धित (उचित या अनुचित का प्रश्न नहीं है), नारी को दूसरे के पास देखना गवारा कर सकता है! खैर, इस बारीक बात को सोचकर मोटी सी बात ले लीजिये। वेश्यागमन से कुसंगति का विकास तो अवश्यम्भावी ही है। मद्यपान तथा अन्य मादक वस्तुओं का सेवन, जुआ, चोरी, छल इत्यादि दुर्गुण लग जाना सरल है। व्यभिचार तथा वेश्यागमन इत्यादि से उत्पन्न संतान कभी भी योग्य नहीं हो सकती और उसका "दोगली" सम्बोधित होना तो स्वाभाविक ही है। इस प्रकार के आचरण से सर्वत्र समाज, जाति, राष्ट्र तथा स्वयं अपना अनहित ही अनहित है। केवल पुरुषों पर ही दोषारोपण करना न्याय संगत नहीं। नारियाँ भी बेमेल विवाहों से असं-तुष्ट रहने पर बड़ी बड़ी भूल कर बैठती हैं। मानसिक वेदना, कलह तथा जीवन की अधोगति तो साधारण से परिणाम हैं। बात अधिक बढ़ने पर आत्महत्या तक की जाती है और कुमार्ग की ओर अग्रसर होने की सच्ची घटनाएं भी घटित होती रहती हैं।

उपचार

अविद्या सब बुराइयों की जड़ है। उपयुक्त शिक्षा के प्रचार से सब त्रुटियों का उन्मूलन किया जा सकता है। नारी शिक्षा में सामाजिक विषयों को भी उचित स्थान देना चाहिये। बच्चों के दिमाग में कोई बात बैठाना अत्यंत सरल है। आरम्भ से उनको हानिकारक रिवाजों, कुरीतियों तथा संस्कारों के खंडन करने योग्य बना देने से, समय आने पर वह अपना भला बुरा सोच, साहस से कार्य कर सकते हैं।

विधुर का कुमारी कन्या से विवाह सामाजिक अपराध सा माना जाना चाहिये। छोटी आयु में हुआ विधुर किसी बाल विधवा से विवाह कर सकता है तथा प्रौढ़ विधुर यदि विवाह करना चाहे तो किसी अपनी अवस्था के अनुकूल सुयोग्य विधवा से विवाह सम्बन्ध कर सकता है। समाज का प्रत्येक सदस्य इसमें सक्रिय सहयोग दे तथा पर्याप्त सुविधायें दी जांय तभी यह प्रयोग में लाया जा सकता है। दहेज इत्यादि को दूर करने से बेमेल विवाह भी कम हो सकते हैं।

'बहु विवाह' के निषेध के लिये निश्चित रूप से कड़ी वैधानिक कार्य वाही की जानी चाहिये। केवल पत्र पर नियम बनाने से कोई लाभ नहीं। शारदा बिल जैसे 'मृतक पत्रों' से कभी कोई सुधार की सम्भावना नहीं हो सकती।

आजकल गर्भ में ही सम्बन्ध तय करने की मूर्खता या बिलकुल बाल-काल से सगाई करने की अदूरदर्शिता अथवा मित्रों के पुत्र, पुत्री होने की भावी आशा में समधी समधी बन जीवन पर्यन्त मित्रता निभाने की ना-समझ भावुकता तो प्रायः अब लुप्त सी हो गई है। किन्तु फिर भी संबंध स्थापित करते समय दो प्राणियों का भावी जीवन, आंख मीचकर भाग्य के भरोसे छोड़ देने की वृत्ति से अभी संघर्ष करना ही चाहिये। खानदान, जाति, इत्यादि के कड़े नियमों को भी कुछ ढीला करने की आवश्यकता है। स्वास्थ्य, योग्यता, शिक्षा, मनोवृत्ति, दृष्टिकोण तथा हो सके तो आर्थिक समानता की कभी अवहेलना न करनी चाहिये। राष्ट्रीय विवाहों (अन्तर्जातीय इत्यादि) का समाज तथा राष्ट्र के हित में बड़ा महत्व है। इससे दुहरा लाभ है। वर्ण भेद की संकीर्णता तथा दूषित वातावरण हिन्दु जाति को असंगठित बनाये रखता है जिसके कारण हमारा राष्ट्र भी कभी सबल नहीं होगा। विभिन्न वर्णों में विवाह सम्बन्ध हो जाने से नया बल मिलेगा। विवाह क्षेत्र का भी विकास होगा और अनमेल विवाह नहीं होंगे। एक दम इस मार्ग का तय करना कठिन है। आरम्भ में एक ही वर्ण के विभिन्न गोत्रों तथा उप-वर्गों (Sub-Castes) को मिलाने से कार्य का श्रीगणेश किया जा सकता है। जब समाज को यह

जीवन-शूल

वैधव्य नारी के उस घोर दुर्भाग्य का नाम है जो उसके सर्वस्व पति के मृत्यु पर जाने पर उस पर छा जाता है। नारी-समाज में विशेषकर हिन्दू नारियों के लिए समस्त संसार सूना हो जाता है तथा उसके समस्त वैभव सुख और शान्ति लुट जाते हैं। श्वसुरालय, मायका तथा अन्य सम्बन्धियों के द्वार उसके लिए लगभग बन्द हो जाते हैं। प्रायः विधवा को चाहे उसने विवाह उपरान्त पति-मुख के दर्शन भी क्यों न किये हों, अपने स्वर्गीय आराध्य देव, जीवन धन इत्यादि विशेषणों से अलंकृत पति के नाम की माला जप कर करती अर्चना व एकादशी इत्यादि का व्रत धारण कर, मांग का सिन्दूर, कर की चूड़ियाँ आदि समस्त आभूषण व उत्तम वस्त्रों को त्याग कर, अरमानों को कुचल कर, अपने फूटे हुए भाग्य पर आंसू बहाकर तथा समाज पर भार-स्वरूप बन कर जीवन नैया को बिना खेवनहार ही पार लगाना पड़ता है। ऐसा ही हमारे हिन्दू धर्म में परम्परा से चला आ रहा है। युगों में परिवर्तन हुआ, क्रान्तियां हुई, राज्य पलटे लेकिन विधवा नारी का भाग्य ज्यों का त्यों रहा। शरीर के किसी अंग में भी पीड़ा अथवा शूल हो तो वह जितने समय रहता है जीवन दूभर हो जाता है। जरा सोचिये, जिस व्यक्ति को जीवन पर्यन्त वेदना सहनी हो, जीवन में इससे छुटकारा पाने की कोई आशा ही न हो, रोज २४ घण्टे तथा वर्ष के ३६५ दिन रहती हो, उसकी दशा कैसी करुणाजनक होगी, उसका जीवन कितना भार स्वरूप होगा? यदि नहीं तो इस शूल को कैसे दूर करें? किस हद तक दूर किया जा सकता है? क्या यह दूर किया जा सकता है? ताकि विधवा बहनें समाज का भार बनकर जीवन व्यतीत न करें। यह विचारणीय प्रश्न है।

स्थिति

विधुर का कुमारी कन्या से विवाह सामाजिक अपराध सा माना जाना चाहिये । छोटी आयु में हुआ विधुर किसी बाल विधवा से विवाह कर सकता है तथा प्रौढ़ विधुर यदि विवाह करना चाहे तो किसी अपनी अवस्था के अनुकूल सुयोग्य विधवा से विवाह सम्बन्ध कर सकता है। समाज का प्रत्येक सदस्य इसमें सक्रिय सहयोग दे तथा पर्याप्त सुविधायें दी जांय तभी यह प्रयोग में लाया जा सकता है। दहेज इत्यादि को दूर करने से बेमेल विवाह भी कम हो सकते हैं।

'बहु विवाह' के निषेध के लिये निश्चित रूप से कड़ी वैधानिक कार्य वाही की जानी चाहिये । केवल पत्र पर नियम बनाने से कोई लाभ नहीं। शारदा बिल जैसे 'मृतक पत्रों' से कभी कोई सुधार की सम्भावना नहीं हो सकती।

आजकल गर्भ में ही सम्बन्ध तय करने की मूर्खता या बिलकुल बाल-काल से सगाई करने की अदूरदर्शिता अथवा मित्रों के पुत्र, पुत्री होने की भावी आशा में समधी समधी बन जीवन पर्यन्त मित्रता निभाने की ना-समझ भावुकता तो प्राय: अब लुप्त सी हो गई है। किन्तु फिर भी संबंध स्थापित करते समय दो प्राणियों का भावी जीवन, आंख मीचकर भाग्य के भरोसे छोड़ देने की वृत्ति से अभी संघर्ष करना ही चाहिये। खानदान, जाति, इत्यादि के कड़े नियमों को भी कुछ ढीला करने की आवश्यकता है। स्वास्थ्य, योग्यता, शिक्षा, मनोवृत्ति, दृष्टिकोण तथा हो सके तो आर्थिक समानता की कभी अवहेलना न करनी चाहिये । राष्ट्रीय विवाहों (अन्तर्जातीय इत्यादि) का समाज तथा राष्ट्र के हित में बड़ा महत्व है। इससे दुहरा लाभ है। वर्ण भेद की संकीर्णता तथा दूषित वातावरण हिन्दु जाति को असंगठित बनाये रखता है जिसके कारण हमारा राष्ट्र भी कभी सबल नहीं होगा। विभिन्न वर्णों में विवाह सम्बन्ध हो जाने से नया बल मिलेगा। विवाह क्षेत्र का भी विकास होगा और अनमेल विवाह नहीं होंगे। एक दम इस मार्ग का तय करना कठिन है। आरम्भ एक ही वर्ण के विभिन्न गोत्रों तथा उप-वर्गों (Sub-Castes) मिलाने से कार्य का श्रीगणेश किया जा सकता है। जब समाज को

खटखटाना पड़ता है। मैके में भी मां–बाप को छोड़ कर अन्य सदस्य उसे भारस्वरूप ही समझते हैं। वहां पर भी सबकी सेवा कर टुकड़ा पाना पड़ता है। विवाह तथा अन्य शुभ अवसरों पर विधवा की उपस्थिति अपशकुन समझी जाती है। बड़ी–बूढ़ियां दया की दृष्टि से नहीं घृणा की दृष्टि से देखती हैं। विधवा विवाह का प्रचार न होने के कारण अधिकतर विधवायें धार्मिक विषय में मन लगा कर ही अपना जीवन व्यतीत करती हैं। धर्म में अन्ध विश्वासों तथा रूढ़ियों का प्रवेश होने के कारण खल पुरुषों को अनुचित अवसर प्राप्त हो जाते हैं। बड़े २ नगरों में कुछ धनी पुरुषों ने, विधवा आश्रम के व्यवस्थापकों, पंडितों, सुधारकों ने—जो धर्म धुरन्धर तथा समाज के ठेकेदार होने का दावा करते हैं, कहीं कहीं व्यभिचार के अड्डे भी बना रक्खे हैं जिनमें, नियत शर्तों पर दलाल रक्खे जाते हैं जो पूजा के लिये मन्दिर तथा तीर्थ स्नान गई हुई विधवाओं को प्रलोभन देकर, प्रपंच में फांस कर अड्डों पर ले जाते हैं। बड़े बड़े साधू सन्यासी जो सारे संसार के सन्मुख तो धर्म का बीड़ा उठाते हैं, किन्तु अड्डों तथा मन्दिरों में धर्म के ढोंग रच रच कर सेवायें अथवा दर्शनार्थ आई हुई विधवाओं के साथ व्यभिचार व बलात्कार करने में भी नहीं चूकते। काशी जी पवित्र तीर्थ स्थान होने के कारण विधवाओं तथा साधुओं का जमाव होना स्वाभाविक ही है। कुछ खल पुरुषों के नैतिक पतन के कारण काशी धर्म के साथ व्यभिचार का भी अड्डा है। इसी कारण किसी अनुभवी ने यह कहावत कि 'रांड सांड सीढ़ी सन्यासी, इनसे बचे तो सेवे काशी' प्रचलित करके बहुत सत्य ही बताया है। यदि किसी मनुष्य को काशी जी की धर्म यात्रा करनी हो तो स्थानिक सीढ़ी व सांड की अधिकता के साथ साथ उसे विधवाओं तथा सन्यासियों की अधिकता तथा प्रभाव से भी बचना पड़ेगा वरना वह पुण्य न कमावेगा। कहने का अभिप्राय यह है कि काशी आदि जैसे महान तीर्थों में भी व्यभिचार का बाजार खूब गर्म रहता है। इसमें विधवाओं के प्रति समाज द्वारा किये गये अन्याय का ही दोष अधिक है।

भारतीय समाज पर विधवाओं की परिस्थति का बहुत अनिष्टकारी प्रभाव पड़ता है। देनो प्रति के साथ साथ गृह सदस्यों की दासता तथा ताड़ना से दुखित होकर तथा समाज व धर्म के बड़े बड़े ठेकेदारों द्वारा उत्पन्न व्यभिचार व अत्याचार की शिकार बन कर वे भीरु अबलायें अपना जीवन व्यतीत करने के लिये नाना प्रकार के कुमार्गों की ओर अग्रसर हो जाती हैं। कुछ वेश्या वृति करने के लिये भी बाध्य हो जाती हैं वे सोचती हैं कि भीरता के वश होकर वे सतीत्व जैसे रत्न को तो खो ही चुकी या उनमें उसे जीवन पर्यन्त कायम रखने की समर्थ नहीं है तो वेश्या वृत्ति कर दासता तथा लांछनाओं से तो मुक्त पावेंगी। वैधव्य के बन्धनों से छूट कर वे इस नीच जीवन मे सुख व सन्तोष अनुभव करने का प्रयत्न करती हैं। इसके अतिरिक्त जो लोक लाज से डर कर खुले बाजार इस व्यवसाय को करने में हिचकिचाती हैं वे लुक छिपकर व्यभिचार के अड्डों में सम्मलित होने लगती हैं। कुछ भिखारणी हो जाती हैं। कुछ किसी के साथ भाग जाती हैं। वेश्यालय की ९० प्रतिशत वेश्याओं को वैधव्य के पश्चात् ही यह दुर्गती देखनी पड़ती है। इस प्रकार से विधवाओं की सामाजिक स्थिति के कारण स्त्री तथा पुरुषों का नैतिक पतन होता है। इस प्रकार से देश की विधवाओं की दशा स्त्री तथा पुरुष दोनों समाज के ह्रास का कारण बन जाती है।

उपचार

विधवा होना तो ईश्वराधीन है। इसे न कोई बना सकता है न मिटा सकता है यदि इनके बन्धनों को ढीला कर दिया जाय तथा वैधव्य को मिटाने का उचित उपचार किया जाय तो इसलिए अबलाओं का जीवन सुखमय बनने के साथ साथ देश तथा समाज का कल्याण हो सकता है। विधवायें अधिकतर दो प्रकार की होती हैं। एक तो वे जिन्होंने पति सुख ठीक से दर्शन भी न किये हों या विवाह के वर्ष दो वर्ष उपरान्त ही जीवन पर्यन्त के लिये इस शूल से पीड़ित हो गई हों। ऐसी बाल विधवायें कहलाती हैं। इन विधवाओं का समाज के सामने प्रश्न पुनर्विवाह होना चाहिये तभी उनका कल्याण हो सकता है। [illegible]

खटखटाना पड़ता है। मैके में भी मां-बाप को छोड़ कर अन्य सदस्य उसे भारस्वरूप ही समझते हैं। वहां पर भी सबकी सेवा कर टुकड़ा पाना पड़ता है। विवाह तथा अन्य शुभ अवसरों पर विधवा की उपस्थिति अपशकुन समझी जाती है। बड़ी-बूढ़ियां दया की दृष्टि से नहीं घृणा की दृष्टि से देखती हैं। विधवा विवाह का प्रचार न होने के कारण अधिकतर विधवायें धार्मिक विषय में मन लगा कर ही अपना जीवन व्यतीत करती हैं। धर्म में अन्ध विश्वासों तथा रूढ़ियों का प्रवेश होने के कारण खल पुरुषों को अनुचित अवसर प्राप्त हो जाते हैं। बड़े २ नगरों में कुछ धनी पुरुषों ने, विधवा आश्रम के व्यवस्थापकों, पंडितों, सुधारकों ने—जो धर्म धुरन्धर तथा समाज के ठेकेदार होने का दावा करते हैं, कहीं कहीं व्यभिचार के अड्डे भी बना रखते हैं जिनमें, नियत शर्तों पर दलाल रक्खे जाते हैं जो पूजा के लिये मन्दिर तथा तीर्थ स्नान गई हुई विधवाओं को प्रलोभन देकर, प्रपंच में फांस कर अड्डों पर ले जाते हैं। बड़े बड़े साधू सन्यासी जो सारे संसार के सन्मुख तो धर्म का बीड़ा उठाते हैं, किन्तु अड्डों तथा मन्दिरों में धर्म के ढोंग रच रच कर सेवायें अथवा दर्शनार्थ आई हुई विधवाओं के साथ व्यभिचार व बलात्कार करने में भी नहीं चूकते। काशी जी पवित्र तीर्थ स्थान होने के कारण विधवाओं तथा साधुओं का जमाव होना स्वाभाविक ही है। कुछ खल पुरुषों के नैतिक पतन के कारण काशी धर्म के साथ व्यभिचार का भी अड्डा है। इसी कारण किसी अनुभवी ने यह कहावत कि 'रांड सांड सीढ़ी सन्यासी, इससे बचे तो सेवे काशी' प्रचलित करके कटु सत्य ही बताया है। यदि किसी मनुष्य को काशी जी की धर्म यात्रा करनी हो तो स्थानिक सीढ़ी व सांड की अधिकता के साथ साथ उसे विधवाओं तथा सन्यासियों की अधिकता तथा प्रभाव से भी बचना पड़ेगा वरना वह पुण्य न कमावेगा। कहने का अभिप्राय यह है कि काशी आदि जैसे महान तीर्थों में भी व्यभिचार का बाजार खूब गर्म रहता है। इसमें विधवाओं के प्रति समाज द्वारा किये गये ही दोष अधिक है।

भारतीय समाज पर विधवाओं की परिस्थिति का बहुत अनिष्टकारी प्रभाव पड़ता है। जैसे [illegible] गहनों की दासता तथा ताड़ना से दुखित होकर तथा समाज व धर्म के बड़े बड़े ठेकेदारों द्वारा उत्पन्न व्यभिचार व अत्याचार की शिकार बन कर ये भोली अबलायें अपना जीवन व्यतीत करने के लिये नाना प्रकार के कुमार्गों की ओर अग्रसर हो जाती हैं। कुछ वेश्या वृत्ति करने के लिये भी बाध्य हो जाती हैं वे सोचती हैं कि औरतों के वश होकर वे सतीत्व जैसे रत्न को तो खो ही चुकी या उनमें रखे जीवन पर्यन्त कायम रखने की समर्थ नहीं हैं तो वेश्या वृत्ति कर दासता तथा लांछनाओं से तो मुक्त पावेगी। वैधव्य के बन्धनों से छूट कर ये इस नीच जीवन में सुख व सन्तोष अनुभव करने का प्रयत्न करती हैं। इसके अतिरिक्त जो लोक लाज से डर कर खुले बाजार इस व्यवसाय को करने में हिचकिचाती हैं वे लुक छिपकर व्यभिचार के अड्डों में सम्मलित होने लगती हैं। कुछ भिखारणी हो जाती हैं। कुछ किसी के साथ भाग जाती हैं। वेश्यालय की ९० प्रतिशत वेश्याओं को वैधव्य के पश्चात् ही यह ड्योढ़ी देखनी पड़ती है। इस प्रकार से विधवाओं की सामाजिक स्थिति के कारण स्त्री तथा पुरुषों का नैतिक पतन होता है। इस प्रकार से देश की विधवाओं की दशा स्त्री तथा पुरुष दोनों समाज के ह्रास का कारण बन जाती है।

उपचार

विधवा होना तो ईश्वराधीन है। इसे न कोई बना सकता है न मिटा सकता है यदि इसके बन्धनों को ढीला कर दिया जाय तथा वैधव्य को मिटाने का उचित उपचार किया जाय तो असंख्य अबलाओं का जीवन सुखमय बनने के साथ साथ देश तथा समाज का कल्याण हो सकता है। विधवायें अधिकतर दो प्रकार की होती हैं। एक तो वे जिन्होंने पति सुख के ठीक से दर्शन भी न किये हों या विवाह के वर्ष दो वर्ष उपरान्त ही जीवन पर्यन्त के लिये इस शूल से पीड़ित हो गई हों। ये बाल विधवाऐं कहलाती हैं। इन विधवाओं का समाज में खुले आम पुर्नविवाह होना चाहिये तभी उनका कल्याण हो सकता है। पति के मर जाने से तथा

सटखटाना पड़ता है। मैके में भी मां-बाप को छोड़ कर अन्य गदस्य उसे भारस्वरूप ही समझते हैं। वहां पर भी सबकी सेवा कर दुःख पाना पड़ता है। विवाह तथा अन्य शुभ अवसरों पर विधवा की उपस्थिति अपशकुन समझी जाती है। बड़ी-बूढ़ियां दया की दृष्टि से नहीं घृणा की दृष्टि से देखती हैं। विधवा विवाह का प्रचार न होने के कारण अधिकतर विधवायें धार्मिक विषय में मन लगा कर ही अपना जीवन व्यतीत करती हैं। धर्म में अन्ध विश्वासों तथा रूढ़ियों का प्रवेश होने के कारण खल पुरुषों को अनुचित अवसर प्राप्त हो जाते हैं। बड़े २ नगरों में कुछ धनी पुरुषों ने, विधवा आश्रम के व्यवस्थापकों, पंडितों, सुधारकों ने—जो धर्म धुरन्धर तथा समाज के ठेकेदार होने का दावा करते हैं, कहीं कहीं व्यभिचार के अड्डे भी बना रखते हैं जिनमें, नियत शर्तों पर दलाल रखते जाते हैं जो पूजा के लिये मन्दिर तथा तीर्थ स्नान गई हुई विधवाओं को प्रलोभन देकर, प्रपंच में फांस कर अड्डों पर ले जाते हैं। बड़े बड़े साधु सन्यासी जो सारे संसार के सन्मुख तो धर्म का बीड़ा उठाते हैं, किन्तु अड्डों तथा मन्दिरों में धर्म के ढोंग रच रच कर सेवायें अथवा दर्शनार्थ आई हुई विधवाओं के साथ व्यभिचार व बलात्कार करने में भी नहीं चूकते। काशी जी पवित्र तीर्थ स्थान होने के कारण विधवाओं तथा साधुओं का जमाव होना स्वाभाविक ही है। कुछ खल पुरुषों के नैतिक पतन के कारण काशी धर्म के साथ व्यभिचार का भी अड्डा है। इसी कारण किसी अनुभवी यह कहावत कि 'रांड सांड सीढ़ी सन्यासी, इससे बचे तो सेवे प्रचलित करके बहु सत्य ही बताया है। यदि किसी मनुष्य की धर्म यात्रा करनी हो तो स्थानिक सीढ़ी व सांड की अ साथ उसे विधवाओं तथा सन्यासियों की अधिकता बचना पड़ेगा वरना वह पुण्य न कमावेगा। कि काशी आदि जैसे महान तीर्थों में भी रहता है। इसमें विधवाओं के प्रति समाज ही दोष अधिक है।

विधवा आश्रम का प्रचार हमारे देश में काफी समय से होता आरहा है। लेकिन वे विधवाओं के जीवन को उन्नत बनाने में कभी भी सफल न हुए। इसका एक मात्र कारण उनका अनुचित संगठन है। प्रायः देखा जाता है कि विधवा आश्रम के संचालक पुरुष ही होते हैं। पुरुष चाहे वृद्ध ही क्यों न हों, परन्तु उनके [illegible] बल और संयम का है। और [illegible] है [illegible] पूरे नहीं उतरते। इसके कारण से बहुत से विधवा आश्रम व्यभिचार के केन्द्र ही बन जाते हैं। इसलिए विधवा आश्रम के प्रबन्ध कार्य उनका प्रबन्ध संरक्षण इत्यादि सभी योग्य स्त्रियों के हाथ में ही होना चाहिए। उनमें हर प्रकार की विधवाओं की शिक्षा का [illegible] देना चाहिए जो विधवायें ऐसी हों कि उनका पुनर्विवाह किया जा सके उनकी शिक्षा का ढंग और होना चाहिए। और जो अधेड़ व [illegible] स्त्रियों की शिक्षा का ढंग भी भिन्न होना चाहिए। खेती बारी के काम में सहयोग, बुनाई, रंगाई, गाय, भैंसों का कार्य सभी सिखाने चाहिए तभी विधवा आश्रम सफल होंगे व उसमें रहने वाली विधवायें अपनी जीविका उपार्जन के साथ २ दैनिक उन्नति भी कर सकती हैं।

"विधवा विवाह नहीं होना चाहिये। पुनर्विवाह घोर अधर्म है" आज तक धर्म के ठेकेदारों की यही पुकार है। इसके प्रचार को रोकने के लिए धर्म की दुहाई दी जाती है। यह नारी जाति पर घोर अन्याय है। पुरुष और नारी दोनों संसार के समान मानव हैं। समाज के दो अंग हैं। दोनों का एक ही प्रकार से जन्म तथा लालन पालन होता है। दोनों की दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने के लिए समान भावनायें होती हैं। किन्तु क्या कारण है कि पुरुष की तो सात शादियाँ होने में भी कोई हर्ज नहीं चाहे वह कब्र में जाने के लिए पैर लटकाये हुये ही क्यों न बैठा हो और नारी की दूसरी शादी होने में भी अधर्म है! विधुर को तो पत्नी की लाश श्मशान में पहुंचाने के पूर्व ही कन्या खोजने का धर्म के अन्तर्गत अधिकार है किन्तु विधवा को स्वप्न में भी दूसरे पुरुष को पति विचारने में अधर्म है। पुरुष तो चाहे साठ

सन्तान हीन होने से उनकी स्वयं की तो गृहस्थी होती ही नहीं और ससुराल वालों के अनुचित व्यवहार के कारण उनको मैके की ही शरण लेनी पड़ती है। वहां पर भी माता पिता के जीवित रहने तक तो उनका जीवन जैसे तैसे कट भी जाता है लेकिन उनके उपरान्त उनको अपना जीवन काटना दुर्लभ हो जाता है। क्योंकि भाईयों की स्वयं की गृहस्थी हो जाने से वे बहनों को प्रायः भार स्वरूप समझने लगते हैं। इसलिये ऐसी विधवाओं की जिनकी भविष्य में कभी भी अपनी गृहस्थी बनाने की आशा न हो उनका पुनर्विवाह अवश्य कर देना चाहिये।

दूसरे प्रकार की विधवायें वे होती हैं जिन पर विवाह के काफी समय बाद इस दुर्भाग्य का प्रहार होता है। वे सन्तान वाली होती हैं। ऐसी विधवाओं का पुनर्विवाह बहुत आवश्यक नहीं। क्योंकि उनको सन्तान के बड़े होने पर स्वयं अपनी गृहस्थी बन जाने की आशा लगी रहती है। इसलिए ऐसी विधवायें जीवन पर्यन्त गृहजनों तथा सन्तान की सेवा में रह सकती हैं। उन्हें यदि वे शिक्षित न हों और शिक्षा ग्रहण कर सकती हों तो अवश्य कर लेनी चाहिये और शिक्षिका जैसी किसी वृत्ति को स्वीकार कर लेना चाहिये। यह जीविका उपार्जन करने का सबसे अच्छा साधन है। अधिक आयु या अन्य किसी कारण से यदि शिक्षा ग्रहण करना असम्भव हो तो भी जीविका उपार्जन के बहुत से साधन हैं। जिनको उन्हें ग्रहणकरना चाहिये। दस्तकारी से वस्तुयें बनाकर तथा सिलाई कर जीविका उपार्जन किया हो जा सकता है। अभी भी विधवायें इस प्रकार जीविकोपार्जन करती हीं हैं। इसके अलावा पिसाई कुटाई से भी काम चलाया जा सकता है। यह उन बहिनों के लिए उपयुक्त है जो अधिकतर इस श्रेणी की हैं तथा सिलाई इत्यादि से अनभिज्ञ हैं। अभिप्राय यह है कि जीविका उपार्जन के बहुत से ऐसे साधन हैं जिन्हें विधवायें सहज में ही कर सकती हैं। उनको इसके लिए कुमार्ग की शरण न लेनी चाहिए।

विधवा आश्रम का प्रचार हमारे देश में काफी समय से होता रहा है। लेकिन वे विधवाओं के जीवन को उन्नत बनाने में कभी भी सफल न हुए। इसका एक मात्र कारण उनका अनुचित संगठन है। प्रायः देखा जाता है कि विधवा आश्रम के व्यवस्थापक पुरुष ही होते हैं। पुरुष चाहे वृद्ध ही क्यों न हों, प्रश्न उनके नैतिक बल और संयम का है। और अधिकतर देखा गया है कि वे इसमें पूरे नहीं उतरते। इसके कारण से बहुत से विधवा आश्रम व्यभिचार के केन्द्र ही बन जाते हैं। इसलिए विधवा आश्रम के प्रत्येक कार्य उनका प्रबन्ध संरक्षण इत्यादि सभी योग्य स्त्रियों को ही सौंपने चाहिए। इनमें हर प्रकार की विधवाओं की शिक्षा की ओर ध्यान देना चाहिए जो विधवायें ऐसी हों कि उनका पुनर्विवाह किया जा सके उनकी शिक्षा का ढंग और होना चाहिए। प्रौढ़ तथा अधेड़ व ग्रामीण स्त्रियों की शिक्षा का ढंग भी भिन्न होना चाहिए। खेती बारी के काम में सहयोग, बुनाई, रंगाई, गाय, भैंसों का कार्य सभी सिखाने चाहिए तभी विधवा आश्रम सफल होंगे व उसमें रहने वाली विधवायें अपनी जीविका उपार्जन के साथ २ दैनिक उन्नति भी कर सकती हैं।

"विधवा विवाह नहीं होना चाहिये। पुनर्विवाह घोर अधर्म है" आज तक धर्म के ठेकेदारों की यही पुकार है। इसके प्रचार को रोकने के लिए धर्म की दुहाई दी जाती है। यह नारी जाति पर घोर अन्याय है। पुरुष और नारी दोनों संसार के समान मानव हैं। समाज के दो अंग हैं। दोनों का एक ही प्रकार से जन्म तथा लालन पालन होता है। दोनों को दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने के लिए समान भावनायें होती हैं। किन्तु क्या कारण है कि पुरुष को तो सात शादियां होने में भी कोई हर्ज नहीं चाहे वह कब्र में जाने के लिए पैर लटकाये हुये ही क्यों न बैठा हो और नारी को दूसरी शादी होने में भी अधर्म है! विधुर को तो पत्नी की लाश श्मशान में पहुंचाने के पूर्व ही कन्या खोजने का धर्म के अन्तर्गत अधिकार है किन्तु विधवा को स्वप्न में भी दूसरे पुरुष को पति विचारने में अधर्म है। पुरुष तो चाहें साठ

सन्तान हीन होने से उनकी स्वयं की तो गृहस्थी
ससुराल वालों के अनुचित व्यवहार के कारण ... ले
लेनी पड़ती है। वहां पर भो माता पिता के जीवित
जीवन जैसे तैसे कट भी जाता है लेकिन उनके ...
जीवन काटना दुर्लभ हो जाता है। क्योंकि भाईयों
हो जाने से वे बहनों को प्रायः भार स्वरूप समझते
ऐसी विधवाओं की जिनकी भविष्य में कभी भी
आशा न हो उनका पुनर्विवाह अवश्य कर देना चाहि

दूसरे प्रकार की विधवायें वे होती हैं जिन ...
समय बाद इस दुर्भाग्य का प्रहार होता है। वे ...
ऐसी विधवाओं का पुनर्विवाह बहुत आवश्यक
उनकी सन्तान के बड़े होने पर स्वयं अपनी ...
आशा लगी रहती है। इसलिए ऐसी विधवायें ...
तथा सन्तान की सेवा में रह सकती हैं। उन्हें
हो और शिक्षा ग्रहण कर सकती हों तो अवश्य
और शिक्षिका जैसी किसी वृत्ति को स्वीकार कर ...
जीविका उपार्जन करने का सबसे अच्छा
अधिक आयु या अन्य किसी कारण से यदि शिक्षा
हो तो भी जीविका उपार्जन के बहुत से
जिनको उन्हें ग्रहण करना चाहिये। दस्तकारी से
सिलाई कर जीविका उपार्जन किया जा सकता
विधवायें इस प्रकार जीविकोपार्जन करती हैं हैं
सिलाई कढ़ाई से भी काम चलाया जा सकता है।
लिए उपयुक्त है जो अधिकतर इस श्रेणी की हैं
इत्यादि से अनभिज्ञ हैं। अभिप्राय यह है कि ...
बहुत से ऐसे साधन हैं जिन्हें विधवायें सहज में ही
उनको इसके लिए कुमार्ग की शरण न लेनी चाहिए।

विधवा आश्रम का प्रचार हमारे देश में काफी समय से होता आरहा है। लेकिन वे विधवाओं के जीवन को उन्नत बनाने में कभी भी सफल न हुए। इसका एक मात्र कारण उनका अनुचित संगठन है। प्रायः देखा जाता है कि विधवा आश्रम के व्यवस्थापक पुरुष ही होते हैं। पुरुष चाहे वृद्ध ही क्यों न हों, प्रश्न उनके नैतिक बल और संयम का है। और अधिकतर देखा गया है कि वे इसमें पूरे नहीं उतरते। इसके कारण से बहुत से विधवा आश्रम व्यभिचार के केन्द्र ही बन जाते हैं। इसलिए विधवा आश्रम के प्रत्येक कार्य उनका प्रबन्ध संरक्षण इत्यादि सभी योग्य स्त्रियों को ही करने चाहिए। उनमें हर प्रकार की विधवाओं की शिक्षा की ओर ध्यान देना चाहिए जो विधवायें ऐसी हों कि उनका पुनर्विवाह किया जा सके उनकी शिक्षा का ढंग और होना चाहिए। प्रौढ़ तथा अधेड़ व [illegible] स्त्रियों की शिक्षा का ढंग भी भिन्न होना चाहिए। खेती बाड़ी के काम में सहयोग, बुनाई, रंगाई, गाय, भैंसों का कार्य सभी सिखाने चाहिए तभी विधवा आश्रम सफल होंगे व उसमें रहने वाली विधवायें अपनी जीविका उपार्जन के साथ २ दैनिक उन्नति भी कर सकती हैं।

"विधवा विवाह" नहीं होना चाहिये। पुनर्विवाह पाप अधर्म है" आज तक धर्म के ठेकेदारों की यही पुकार है। इसके प्रचार को रोकने के लिए धर्म की दुहाई दी जाती है। यह नारी जाति पर घोर अत्याचार है। पुरुष और नारी दोनों संसार के समान मानव हैं। समाज के दो अंग हैं। दोनों का एक ही प्रकार से जन्म तथा लालन पालन होता है। दोनों को दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने के लिए समान आवश्यकता होती है। किन्तु क्या कारण है कि पुरुष को तो चार शादियाँ [illegible] भी कोई हर्ज नहीं चाहे वह [illegible] आने के लिए पैर लटकाये हुए ही क्यों न बैठा हो और नारी को दूसरी शादी होने [illegible] है। विधुर को तो पहली की लाश श्मशान में पहुंचाने के पूर्व ही [illegible] खोजने का धर्म के अन्तर्गत अधिकार है किन्तु विधवा को स्वप्न में भी दूसरे पुरुष को [illegible] विचारने के [illegible] है। पुरुष [illegible]

वर्ष का ही क्यों न हो १६ वर्ष की युवती से बिना अड़चन के विवाह कर सकता है, चाहे वह उसकी इस शादी का नम्बर कोई सी भी हो लेकिन विधवा चाहे वह कितनी भी अल्पायु की क्यों न हो पति मुख के दर्शन भी क्यों न किये हों दूसरी शादी करने में पाप करती हैं। कुल व समाज दोनों को लज्जित करती हैं। यही नहीं पुरुष तो एक पत्नी के जीवित होते हुए भी उसकी कुरूपता, सन्तान हीनता—चाहे इसमें पति का ही दोष क्यों न हो, अस्वस्थता, अशिक्षा इत्यादि कारणों को समाज के सामने रखकर सहज में ही दूसरी शादी कर सकता है। वह दो से भी अधिक पत्नियां रख सकता है। किंतु स्त्रियों का जीवित अवस्था का तो प्रश्न ही नहीं पति चाहे कितना भी निकम्मा निर्गुणी तथा कुगामी क्यों न हो उसी के साथ जीवन व्यतीत करना तो धर्मानुकूल है ही किन्तु मृत्यु के बाद भी उसी के नाम की निरर्थक माला जपकर रहना धर्म बताया जाता है। हमारे समाज में विधवा विवाह का विरोध करने के लिये धर्म की दुहाई देना और फिर भी नारी जाति तथा पुरुषों को समानाधिकार की बात करना थोथा प्रपंच है। स्त्री और पुरुष दोनों को समान दैवी अधिकार हैं। यदि स्त्रियां पुनर्विवाह के लिये कहती हैं, तो प्राचीन काल की स्त्रियों के प्रमाण उनके सम्मुख रखे जाते हैं तथा उनकी महिमा गा गा कर उनको लज्जित किया जाता है। लेकिन उन प्रमाण दाताओं के सन्मुख प्राचीन काल के पुरुषों के एक पत्नी मत के उदाहरण भी तो रखना अनुचित नहीं होगा। इसलिये हमारे समाज में पुनर्विवाह का विरोध नहीं होना चाहिये विधवा विवाह पुरुष समाज में नारी सम्मान व समान अधिकार की निर्मल कसौटी है।

आज हमारा देश गुलामी की बेड़ियां तोड़ चुका है। आज स्वतंत्र शासन प्रणाली नयी प्रकार की शिक्षा योजनायें तथा नये २ विधान बना है। कन्या पाठशालाओं में अन्य शिक्षाओं के साथ २ कन्याओं को शिक्षा भी देनी चाहिये, जिससे हमारा समाज विधवाओं और विधवा ह को सम्मान पूर्वक सहन करने योग्य बन सके। चलचित्र आदि भी इसका प्रचार किया जा सकता है। विधान भी ऐसे बनने चाहिये

जिससे सामाजिक उन्नति हो। हमें पूर्ण आशा है कि भारत सरकार अविलम्ब विधवा विवाह को क्रियात्मक प्रोत्साहन देने के लिये अनुकूल सुविधायें देगी और नियम बनायेगी समाज में तो इसके प्रचार के लिये आन्दोलन होता ही है। आर्य समाज जैसी संस्थायें यह कार्य कर रही हैं किन्तु अभी बहुत करना है। भारतीय नारी जाति के उत्थान के लिए इससे बढ़ कर और कोई कार्य नहीं हो सकता।

समाप्त